ISSN 2582-0133
साइकिल
बच्चों का दुमहिया
वर्ष 5 अंक 2 जून - जुलाई 2022
मूल्य ₹125

वर्ष 5 अंक 2 जून - जुलाई 2022

सम्पादन सोपान जोशी, सुशील शुक्ल, शशि सबलोक
सहायक सम्पादक निधि गौड़, चन्दन यादव
डिज़ाइन तापोशी घोषाल
कवर तापोशी घोषाल
बैककवर अतनु राय
वितरण राजेन्द्र परमार, अनीता शर्मा

साल	मूल्य	छूट %	मूल्य छूट के बाद	पंजीकृत डाक खर्च	कुल मूल्य
1	750	12	660	245	905 रुपए
2	1500	15	1275	490	1765 रुपए
3	2250	18	1845	735	2580 रुपए

एक प्रति 125 रुपए
(डाक खर्च अतिरिक्त)

भुगतान विवरण - बैंक ड्राफ्ट/चेक
इकतारा ट्रस्ट Ektara Trust के नाम नई दिल्ली में देय
ऑनलाइन ट्रांसफर - आई.सी.आई.सी.आई बैंक,
बी-78 डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली
खाता नम्बर - 630001028225, IFSC ICIC0006300 में भेजें।
ऑनलाइन खरीद की लिंक
www.ektaraindia.in/ektarashop/
भुगतान और वितरण की पूरी जानकारी
publication@ektaraindia.in पर दें।

इस QR कोड को मोबाइल से स्कैन कर सभी UPI से भुगतान किया जा सकता है। भुगतान के बाद सम्पर्क, पता, ऑर्डर और भुगतान की तमाम जानकारियाँ साझा करें।

इकतारा **तक्षशिला का बाल साहित्य एवं कला केन्द्र**
ई-1/212, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462016
फोन 0755-4939472, 9109915118, 9630097118
ई-मेल cycle@ektaraindia.in
वेबसाइट www.ektaraindia.in

विनोद कुमार शुक्ल
चित्रः तापोशी घोषाल

अहाते में दौड़ते-दौड़ते थक गई थी। बरामदे की बेंत की छोटी-सी कुर्सी पर जाकर बैठ गई। मैंने देखा अहाते का पेड़ तो खड़ा है। ऐसा ध्यान पहले कभी नहीं गया था। मैंने अपनी कुर्सी उठाई और पेड़ से सटाकर रख दी। थककर पेड़ बैठ जाएगा। पेड़ कभी नहीं थकता।

लीला मजूमदार
चित्रः प्रिया कुरियन
बाँग्ला से अनुवादः यायावर

यह जो मैं कँधे पर लिए जा रहा हूँ उसे क्या लाठी समझे हो? बिलकुल नहीं। यह हमारे शम्भू के छाते की डण्डी है। शम्भू छाते को अपने घुटनों के बीच रखे ट्राम में जा रहा था। तब किसी शरारती ने उसके छाते के भीतर अधजली बीड़ी फेंक दी। इससे छाते का कपड़ा जल गया। घर आने पर उसने उसे सीढ़ी के नीचे फेंक दिया। मैंने छाते की ताड़ियों को निकाल उसकी डण्डी रख ली।
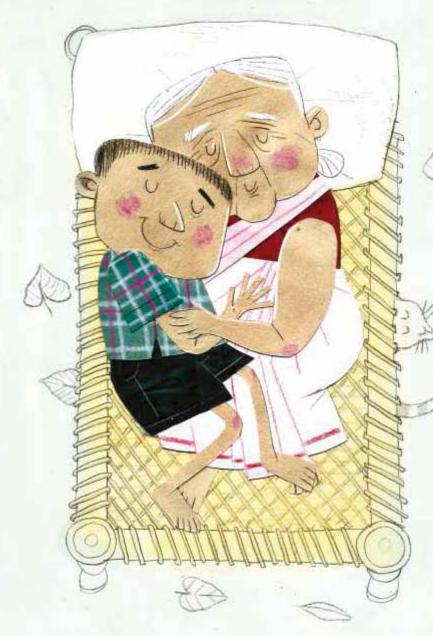
लाठी के सिरे पर बँधी पोटली देखी है? उसमें मेरा नाश्ता है। फूफी की डलिया में से लिया है। वे लोग मुझे कुछ नहीं देते इसलिए खुद ही लेना पड़ता है। मेरे साथ एक काला-काला-सा क्या जा रहा है देखा है? वह छोटे काका का कुत्ता पुकी है। शर्ट और पैंट को छोड़कर मेरे पास कुछ भी मेरा नहीं है। जूते मन्टू के हैं। उसे बिना बताए ले जा रहा हूँ।

कहाँ जा रहा हूँ जानते हो? इन्द्रधनुष खोजने। जानते हो क्यों? सुना है इन्द्रधनुष जिस खम्भे से निकला है उसके नीचे एक घड़ा सोना रखा है इसलिए। सोना लेकर क्या करूँगा जानते हो? उससे एक सींग वाला घोड़ा खरीदूँगा। क्यों खरीदूँगा बताऊँ? उस पर सवार होकर दादी के पास जाऊँगा।

दादी के पास क्यों जाना चाहता हूँ जानते हो? दादी मुझे बहुत प्यार करती है इसलिए। मेरे लिए नारियल के लड्डू बनाती है। सेब देती है। पतंग खरीद देती है। रात को जागने देती है। पढ़ने को नहीं कहती। कोई मुझे डाँटे तो नाराज़ होती है। कोई मेरी शिकायत करे तो गले से लगा लेती है। मैं गिर जाऊँ और कपड़ों पर कीचड़ लग जाए तब भी मुझे गोद में उठा लेती है।

जानते हो? मैं बहुत खराब लड़का हूँ। माँ, बाबा, छोटे काका, मौसी, फूफी, भाभी, मँझली बहन सभी कहते हैं कि उन्होंने मेरे जैसा खराब लड़का कहीं नहीं देखा। मैं सुबह उठना नहीं चाहता। दाँत साफ नहीं करता। पढ़ना नहीं चाहता। कॉपी पेंसिल न जाने कहाँ रखकर भूल जाता हूँ। किताब फाड़ता हूँ। नहाने में देरी करता हूँ। मुँह पर जवाब देता हूँ। बड़ों की बात नहीं मानता। जानते हो, मैंने बिना बताए छोटी बहन की सारी टॉफी खा ली थी। जानते हो, मैं भात ठीक तरह से नहीं खाता। गिराता हूँ, बिखराता हूँ।

गुस्सा करता हूँ। केवल कच्चे आम खाना चाहता हूँ। बताशा खाना चाहता हूँ। दादी मुझे काँसे के गिलास में पानी के साथ बताशा देती है। मेरी दादी कदम्ब के पेड़ के नीचे चटाई बिछा मेरे पास लेटकर मुझे कहानियाँ सुनाती हैं। सब सच्ची कहानियाँ। दादी के बाबा ने गोराई नदी में कैसा मगरमच्छ

देखा? वह उनकी बूढ़ी माँ को पकड़कर ले जा रहा था। माँझियों ने नाव से जाकर मगरमच्छ के सिर पर डण्डा मारा तो उसने बूढ़ी माँ को छोड़ दिया। बूढ़ी माँ बोली, "मुझे बचा लिया, तुम भी बचे रहो।" दादी यही सब कहानियाँ सुनाती हैं। वह मुझे आम रस देती है। मैं चाट-चाट कर खाता हूँ और वह आँचल से मेरा मुँह पौंछ देती है। वे लोग कहते हैं कि बाबा-माँ जब कटवा गए थे तो मैं दो माह दादी के पास रहा था। दादी ने तब लाड़कर मुझे बिगाड़ दिया था।

एक दिन मैं शाम को दादी के साथ बाँध के किनारे घूमने गया था। लौटते समय चल नहीं पा रहा था। आखिर हम एक जगह बैठे। दादी ने मेरे पाँव दबाए। उधर से उबली मटर वाला जा रहा था। दादी उसे जानती थी। दादी ने मटर लेकर उससे कहा कि घर आकर पैसे ले जाना। फिर हम मटर खाते हुए घर आए। घर आकर पूरियाँ खाईं। दादी मेरे लिए रोज़ रात को पूरियाँ बना देती है। कहती है, "माँ से मत कहना, वह रोज़ पूरी खाने से नाराज़ होंगी।" माँ से मैंने कुछ नहीं कहा। दादी मुझे बिल्ली को लेकर सोने देती है। पूसी मेरे तकिए पर सिर रखकर रोज़ मेरे पास सोती। और देखो ना आज पूसी को मेरी थाली में से खाना खिलाने पर कितनी डाँट पड़ी। इसलिए मैं यहाँ नहीं रहूँगा। मैं इन्द्रधनुष ढूँढने जा रहा हूँ। उसके नीचे से सोने से भरा घड़ा बाहर निकालूँगा। उससे एक सींग वाला घोड़ा खरीदूँगा। उस पर सवार होकर दादी के पास जाऊँगा। मैं जानता हूँ वह घोड़े की कहानी दादी की बनाई हुई है।

मैं सचमुच एक सींग वाले घोड़े पर सवार होकर दादी के पास जाऊँगा तो वह हैरान तो हो ही जाएगी? क्यों हो जाएगी, जानते हो?

पेड़

जसिन्ता केरकेट्टा
चित्रः तापोशी घोषाल

पेड़ के नीचे फल गिरे हैं
फल के भीतर बीज भरे हैं
बीज के भीतर नए पेड़ खड़े हैं।
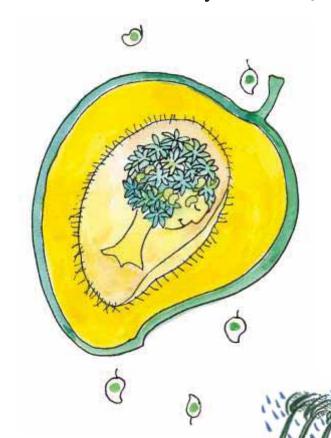
5 जून और 2 जून

आकल्पनः सोपान जोशी
चित्रः तापोशी घोषाल

हम पृथ्वी से, उसके पर्यावरण से बने हैं। हमारे त्यौहार भी प्रकृति के ही उत्सव हैं। जैसे, होली वसन्त में आती है। तब चारों तरफ फूल खिले होते हैं। मैंने बताया था ना, पहले के ज़माने में होली के रंग कैसे बनते थे?
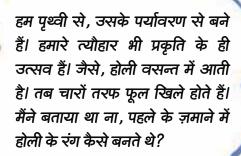
हाँ, फूलों से। जैसे टेसू के फूल।

बिलकुल! अब बताओ दीवाली कब आती है? अक्टूबर-नवम्बर मत कहना। ऋतु बताओ।

बारिश के बाद, जाड़े से पहले।

हाँ। बारिशें बहुत ज़रूरी हैं। पानी के लिए। फसलों की सिंचाई के लिए।

बारिश में भीगना कितना अच्छा लगता है। नाव चलाना। छप छप करना।

बिलकुल बिलकुल। बारिशों के बाद ही सबसे बड़ी फसल खरीफ की फसल कटती है। घर में अनाज भरने से ही दीवाली होती है। धान की फसल खास है। इसीलिए दीपावली को धन-धान्य का त्यौहार कहते हैं।
और हाँ! कभी दीवाली को चन्द्रमा देखा है?

याद नहीं। मैं तो आतिशबाज़ी देखता हूँ।

दीपावली अमावस्या को आती है। खरीफ की फसल कटने के बाद आने वाली पहली अमावस को रोशनी की जाती है।

ऐसा तो मैंने सोचा ही नहीं। ऐसे दूसरे त्यौहार भी हैं क्या?

कई हैं। मकर संक्रांति के बारे में क्या जानते हो?

तिल और गुड़ की गजक खाते हैं। लड्डू खाते हैं। पतंग उड़ाते हैं और क्या?

ये तो रिवाज़ हैं। पर मकर संक्रांति हर साल 14 जनवरी को ही क्यों आती है? बाकी त्यौहार की तारीखें तो बदलती रहती हैं! होली-दीवाली ही नहीं, ईद भी चाँद की हिसाब से आती है। रमज़ान के महीने के बाद। महीने चाँद की परिक्रमा से गिने जाते हैं।

हाँ, तभी महीनों में 28-31 दिन होते हैं। फिर संक्रांति की तारीख बदलती क्यों नहीं?

उसकी गिनती सूरज से होती है। पृथ्वी को सूरज की एक परिक्रमा करने में कितना समय लगता है?

365 दिन! तभी तो साल में इतने दिन होते हैं। दूसरे कौन-से त्यौहार हैं सूरज के हिसाब से?

बड़ा दिन, यानी क्रिसमस। वह हर साल 25 दिसम्बर को ही पड़ता है।

ऐसा क्यों है?

यह तो किसी को नहीं पता कि यीशु मसीह का जन्म किस दिन हुआ था। पर उस समय वह इलाका रोम के साम्राज्य में था। बाद में रोमन साम्राज्य भी यीशु का उपासक हो गया। ईसाई हो गया। रोम में २५ दिसम्बर को सूरज के 'उत्तरायण' होने का पर्व मनाते थे। तो इसी दिन यीशु का जन्म भी मान लिया गया। संक्रांति भी उत्तरायण का ही तो उत्सव है।

उत्तरायण मतलब क्या?

पृथ्वी सूरज की परिक्रमा टेढ़ी करती है। जब उत्तरी गोलार्ध सूरज की ओर हो जाता है, तब उसे उत्तरायण कहते हैं।

तभी तो साल में मौसम बदलते रहते हैं?

दूसरे त्यौहारों के बारे में बताओ ना मौसी!

अब जाओ। मुझे घर के काम करने हैं। वैसे, तुम्हारे प्रोजेक्ट का क्या हुआ?

अरे, बता दो न मौसी!

पर्यावरण के विनाश की चिन्ता मशीनी उद्योग से पैदा हुई है। कोई 250-300 साल पहले ऐसी मशीनें बनीं जो कोयला जला के बहुत भारी काम कर सकती थीं। इससे तरह-तरह के सामान बनाने के तरीके बदल गए। इसी को औद्योगिक क्रान्ति कहते हैं। इसी का असर था कि धरती के भीतर छिपे खनिजों को खोद निकालना आसान हो गया। पानी के बड़े-बड़े जहाज़ बनने लगे। धरती के नीचे से पेट्रोलियम निकालना आसान हो गया। कोयला और पेट्रोलियम को जलाने से बड़ी ताकत पैदा होती है। इस ताकत का इस्तेमाल जंगलों को काटने में हुआ। नदियों को बाँधने में हुआ। नई-नई मशीनें बनने लगीं। इसी को तरक्की बताया गया। लेकिन नई ज़मीन या नई नदी तो बनाई नहीं जा सकती। यानी हम ऐसे साधनों का इस्तेमाल कर रहे हैं जिन्हें हम बना नहीं सकते। और यह करते हुए हम उस दुनिया को प्रदूषित कर रहे हैं जिससे हमारा वजूद है। इसी चिन्ता में पिछले 50 सालों में पर्यावरण के कई तरह के नए-नए दिवस बन गए हैं। जैसे,

2 फरवरी : विश्व जलभूमि दिवस
27 फरवरी : विश्व पोलर भालू दिवस
3 मार्च : विश्व वन्यजीव दिवस
14 मार्च : नदियों के लिए काम करने का अन्तर्राष्ट्रीय दिवस
18 मार्च : विश्व पुनर्चक्रण दिवस
21 मार्च : अन्तर्राष्ट्रीय वन दिवस
22 मार्च : विश्व जल दिवस
22 अप्रैल : पृथ्वी दिवस
22 मई : अन्तर्राष्ट्रीय जैव विविधता दिवस
5 जून : विश्व पर्यावरण दिवस
8 जून : विश्व समुद्र दिवस
15 जून : विश्व पवन दिवस
18 जून : रेगिस्तान और सूखे से संघर्ष का विश्व दिवस
11 जुलाई : विश्व जनसंख्या दिवस
29 जुलाई : अन्तर्राष्ट्रीय बाघ दिवस
12 अगस्त : विश्व हाथी दिवस
16 सितम्बर : ओज़ोन परत की संरक्षण का अन्तर्राष्ट्रीय दिवस
22 सितम्बर : कार-मुक्त दिवस
सितम्बर का आखिरी रविवार : विश्व नदी दिवस
अक्टूबर का पहला सोमवार : विश्व आवास दिवस
4 अक्टूबर : विश्व प्राणी दिवस
13 अक्टूबर : प्राकृतिक आपदा से बचाव का अन्तर्राष्ट्रीय दिवस
24 अक्टूबर : जलवायु परिवर्तन से बचाव का अन्तर्राष्ट्रीय दिवस
21 नवम्बर : विश्व मछलीपालन दिवस
5 दिसम्बर : विश्व मृदा (मिट्टी) दिवस
11 दिसम्बर : अन्तर्राष्ट्रीय पर्वत दिवस

जसिन्ता केरकेट्टा
चित्रः तापोशी घोषाल
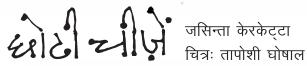
हरे दृश्य पर खुलती एक बड़ी-सी खिड़की

बैठा हुआ आदमी

बैठा हुआ आदमी

कप

लालटेन

हथियारबन्द पहरेदार

हॉल में जाने का रास्ता

लम्बा गलियारा

1.

अपने दरबार में बैठे चंगेज़ खान को एक विद्वान अपनी ताज़ा वैज्ञानिक और खगोलशास्त्रीय खोजों के रेखांकन दिखा रहा है। यह विद्वान पहले कभी क्रान्तिकारी रह चुका है। और खान का कैदी भी।

उदयन वाजपेयी

मिस्त्र में जन्मी और अमरीका में पढ़ी लिखी प्रसिद्ध कलाकार ईमान इस्सा की किताब 'बुक ऑफ फैक्ट्स, अ प्रोपोज़ीशन' (तथ्यों की किताब, एक प्रस्ताव) देखने को मिली। यह कमाल की किताब है। इसमें पढ़ने और देखने को बहुत कुछ है। पर उसके बारे में बताने से पहले थोड़ा-सा शब्दों और उनसे बनी किताबों के बारे में बात कर लेते हैं।

माँ के पेट में बच्चे को यह पता नहीं रहता कि उसे बाहर आकर किताबें मिलने वाली हैं। हम इसे इस तरह भी कह सकते हैं कि किताबें रैक्स में खड़ी-खड़ी माँ के पेट से बाहर आने वाले बच्चों का भी इन्तज़ार करती हैं। वे ऐसी चीज़ें हैं जो तभी जीवित हो जाती हैं जब उन पर हमारी आँखें टहलती हैं। तभी हमें उनमें से आती तरह-तरह की आवाज़ें और तरह-तरह के दृश्य दिखाई देने लगते हैं। माँ के पेट में बच्चे को केवल आवाज़ें सुनाई देती हैं। पैदा होने के कई महीनों बाद तक वह खुद भी केवल आवाज़ें ही निकालता है। बच्चे के गले से निकलती इन आवाज़ों में संगीत होता है। वे आवाज़ें सुनने में अच्छी लगती हैं। इन्हीं संगीत जैसी आवाज़ों को बोलते-बोलते बच्चा शब्द बोलने लगता है। बच्चा या बच्ची माँ के पेट से पैदा होते हैं, शब्द संगीत जैसी आवाज़ों से पैदा होते हैं। इसीलिए ऐसा कोई भी शब्द नहीं होता जिसे गाया न जा सके। बचपन के पहले दो सालों तक बच्चा या बच्ची भाषा को केवल सुनते और बोलते हैं। उनके जीवन में किताब की कोई कल्पना तक नहीं होती।

फिर धीरे-धीरे किताबें उनके जीवन में आती हैं।

हम किताब किसे कहेंगे? जब कुछ ऐसे पन्नों को इकट्ठा किया जाता है जिन पर कुछ लिखा हुआ या छपा हुआ होता है, किताब बन जाती है। बहुत पहले भारत और उसके आसपास के देशों में ताल के पत्तों पर लिखा जाता था या चित्र बनाए जाते थे। कई बार एक ही ताल पत्ते पर लिखा भी जाता था और चित्र भी बना दिया जाता था। फिर उन पत्तों को इकट्ठा करते थे और उन्हें धागों से बाँध दिया जाता था। यह

भी किताब थी। इन ताल पत्तों पर केवल ऐसे लोग लिखते थे जिनकी लिखाई सुन्दर होती थी। वे लोग चित्र बनाते थे जो सुन्दर चित्र बना पाते थे। इससे भी पहले मिस्र में पपाइरस नाम के पौधों से बहुत पतला कागज़ बनाया जाता था। इस पपाइरस पर लिखने का काम होता था और कई पपाइरस को इकट्ठा कर किताब तैयार होती थी। इन पपराइरसों में लिखा हुआ भी होता था और चित्र भी होते थे। मिस्र की शुरुआती लिपि में चित्रों में ही शब्द लिखे जाते थे। इस लिपि को हाइरोग्लाइफ कहा जाता था। इन्हें भी हाथ से लिखा जाता था। इसके बाद की शताब्दियों में चीन में ब्लॉक छपाई होती रही। इसमें लकड़ी के टुकड़ों पर लिखा या चित्र बनाए जाते थे, फिर उन टुकड़ों को स्याही में डुबोकर कागज़ पर दबाया जाता था (कई बार रेशम के टुकड़े पर भी)। ऐसा करने से कागज़ पर शब्द और चित्र उभर आते थे। इन छपे हुए पन्नों या रेशम के टुकड़ों को इकट्ठा कर किताब बनाई जाती थी। इसके बाद धीरे-धीरे लिखने में कई बदलाव आते रहे। पाँच सौ वर्ष पहले जर्मनी के जुहेनास गुटेनबर्ग ने छपाई की मशीन का आविष्कार किया जिसके कारण किताबें हाथ से लिखी जाने की जगह मशीन से छपने लगीं। मशीन से छपने में फायदा यह था कि किताबों की बहुत सारी प्रतियाँ एक साथ तैयार हो सकती थीं। लेकिन नुकसान यह था कि हर किताब एक जैसी दिखाई देती थी। जब हाथों से लिखकर किताबें तैयार की जाती थीं, हर किताब, हर दूसरी किताब से थोड़ी-सी अलग होती थी। हम यह तक कह सकते हैं कि हर किताब पर उसके लिखने वाले की छाप होती थी। मशीन से छपाई के बाद लिखने वाले की वह छाप किताबों से गायब हो गई।

ईमान इस्सा ने अपनी यह किताब कुछ अलग ढंग से प्रकाशित की है। इसके हर पेज पर कुछ लिखा हुआ नहीं है। इस किताब के सम संख्या वाले पन्नों (जैसे 2, 4, 6, 8, 10...) पर आठ दस पंक्तियों में कोई ऐतिहासिक तथ्य लिखा है। विषम संख्या वाले पन्नों (जैसे 1, 3, 5, 7, 9, 11...) पर कुछ लाल बिन्दियाँ छपी हैं। इन बिन्दियों के नीचे कुछ ऐसा लिखा है जिससे एक पूरा दृश्य पढ़ने वाले के दिमाग में बन जाता है। इस दृश्य को ध्यान में रखकर जब पाठक सामने वाले पन्ने को पढ़ता है, उसके दिमाग में कोई एक घटना घटने लगती है। मसलन किताब की शुरुआत जिस पन्ने पर होती है, उस पर आठ लाल बिन्दियाँ छपी हैं। ऊपर की बिन्दी के नीचे लिखा है 'हरे दृश्य पर खुलती एक बड़ी-सी खिड़की'। इसके ठीक नीचे थोड़ी थोड़ी सी दूरी पर दो लाल बिन्दियाँ छपी हैं। उन दोनों ही बिन्दियों के नीचे लिखा है 'बैठा हुआ आदमी'। इसके नीचे एक लाल बिन्दी है जिसके नीचे लिखा है 'कप'। इस बिन्दी के नीचे दो बिन्दियाँ हैं। एक के नीचे लिखा है 'हथियारबन्द पहरेदार' और दूसरी के नीचे लिखा है 'लालटेन'। इन बिन्दियों के नीचे सिर्फ एक बिन्दी है जिसके नीचे लिखा है 'हॉल में जाने का रास्ता'। सबसे नीचे की लाल बिन्दी के नीचे लिखा है 'लम्बा गलियारा'। अगर इन सभी बिन्दियों को ध्यान में रखें तो यह दृश्य बनता है कि हरे मैदान में एक इमारत है जिसकी खिड़की हरियाली पर खुलती है। एक लाल बिन्दी के नीचे लालटेन लिखा होने के कारण यह समझा जा सकता है कि वह शाम का समय है। जैसा कि होता है शाम के हलके अँधेरे में हरियाली का रंग गहरा गया है। इमारत के एक हॉल में दो लोग बैठे हैं। उनके सामने केवल एक कप है। इसका अर्थ यह

है कि ये दोनों लोग बराबरी के नहीं हैं। इनमें से एक दूसरे से ज़्यादा ताकतवर है इसीलिए उसकी खातिर वहाँ कप रखा है। हॉल के दरवाज़े पर हथियार लिए एक पहरेदार खड़ा है। पहरेदार के बगल में हॉल में आने का दरवाज़ा है और दरवाज़े के पीछे लम्बा गलियारा है। इस दृश्य को अपने दिमाग में बना लेने के बाद हम सामने के पन्ने पर लिखे वाक्यों को पढ़ते हैं, वहाँ लिखा हैः

अपने दरबार में बैठे चंगेज़ खान को एक विद्वान अपनी ताज़ा वैज्ञानिक और खगोलशास्त्रीय खोजों के रेखांकन दिखा रहा है। यह विद्वान पहले कभी क्रान्तिकारी रह चुका है और खान का कैदी भी।

अब अगर हम लाल बिन्दियों वाले पन्ने के सहारे बने दृश्य और दूसरे पन्ने पर लिखे वाक्यों को जोड़कर देखें तो हमें यह समझ आ जाएगा कि यहाँ यह बताया जा रहा है कि हरियाली के बीच बनी इमारत के एक हॉल में शाम के समय महान मंगोल योद्धा चंगेज़ खान बैठा है। इस हॉल की बड़ी-सी खिड़की से बाहर की हरियाली दिखाई दे रही थी। अँधेरा धीरे-धीरे गहरा रहा है और उसके साथ ही झींगुरों की आवाज़ें भी बढ़ रही हैं। मानो, पूरी इमारत गहराती हरियाली और झींगुरों की आवाज़ों से घिर गई है। चंगेज़ खान के साथ एक ऐसा विद्वान बैठा है जो कुछ समय पहले अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों के कारण चंगेज़ खान की जेल में रह चुका है। चूँकि यह विद्वान अपने काम में निपुण है शायद इसलिए उसे जेल से रिहा कर दिया गया था। जेल से बाहर आने पर वह विज्ञान और खगोलशास्त्र से जुड़ी खोजों में लगा रहा है। जब उसने एक हद तक खोजें पूरी कर लीं, वह उन्हें दिखाने चंगेज़ खान के पास आया है। लालटेन के प्रकाश में विद्वान को खान का पूरा चेहरा नहीं दिख रहा और न खान को विद्वान का। प्रकाश की किरणें खान के चेहरे पर से फिसलकर नीचे गिर रही हैं जहाँ वे रेखांकन रखे हैं जिन्हें दिखाने विद्वान वहाँ आया है। इस कहानी से यह भी पता चल रहा है कि चंगेज़ खान ने उस विद्वान को उसके विद्रोही होने के कारण भले ही जेल में डाल दिया था पर उसकी प्रतिभा का पता लगने पर उसे छोड़ दिया गया। उससे यह उम्मीद की गई कि वह विज्ञान की खोजों में लग जाए। इसका अर्थ यह है कि चंगेज़ खान ने उस विद्वान से यह कहा होगा कि तुम प्रकृति के नियमों की खोज करो। तुम यह खोज करो कि नक्षत्र अन्तरिक्ष में किस तरह व्यवहार करते हैं। अगर हमारा यह सोचना किसी भी हद तक सच है तो लाल बिन्दियों और कुछ वाक्यों से बनी इस कहानी से चंगेज़ खान का एक अलग रूप सामने आता है। चंगेज़ खान एक ऐसा योद्धा था जिसे प्रकृति और ब्रह्माण्ड को जानने में बहुत गहरी रुचि थी। वह अपनी इस रुचि के कारण अपनी जेल में बन्द विद्रोही विद्वान को भी रिहा कर सकता था। उसकी रुचि उसके डर से कहीं अधिक बड़ी थी।

किताबें ऐसे भी लिखी जा सकती हैं। न सिर्फ किताबों में कल्पना होती है, खुद उन्हें भी कल्पना के सहारे नए-नए ढँग से बनाया जा सकता है। जैसा ईमान इस्सा ने किया है।

सेव

निधि गौड़

चित्रः वसुन्धरा अरोरा

छोटे पतले धागे जैसी सेव इससे भेलपुरी भेलपुरी बनती है। इनके ही एक चचाजाद भाई हैं। इनसे थोड़े लहीम शहीम। घर में सब्ज़ी न हो तो टमाटर की तरी में इन्हें पहुँचा दो। सेव टमाटर की शानदार सब्ज़ी बनकर लौटते हैं। चाहो तो स्वाद के लिए किसी भी सादी दाल-सब्ज़ी में डाल दो।

मध्यप्रदेश के रतलाम के भील समुदाय ने इन्हें बनाना शुरू किया था। के. टी. आचार्य भोजन के इतिहास के जानकार हैं। वे कहते हैं कि सेव का सबसे पहला ज़िक्र बारहवीं सदी में राजा सोमेश्वर द्वारा संकलित किताब 'मानासोलासा' (Manasollasa) में पाया गया। 2014 में इसे मान्यता भी मिल गई।

2013 में रतलामी सेव व्यापारियों ने सरकार से सेव बनाने के बड़े कारखाने और गुणवत्ता जाँचने की प्रयोगशाला बनाने की माँग रखी। जून 2014 में करमदी में नमकीन उद्योग की नींव रख दी गई। फरवरी 2016 में इसे आगे बढ़ाते हुए एक कांट्रेक्टर लाया गया। उद्योग की ज़मीन पर चने और हरी मिर्च की फसल को बुलडोज़र से रौंदा गया। इस ज़मीन पर करीब 20 भील परिवार कई दशकों से खेती कर रहे थे।

कारखाना तो अभी तक नहीं बना लेकिन सेव बनाने वाले भील किसान से मज़दूर हो गए।

बस और बच्चा

विष्णु नागर
चित्रः तापोशी घोषाल

लाल बत्ती पर
जान हथेली पर रख
मैं बस में चढ़ा

बस खाली थी
ड्राइवर मुस्तैद
कंडक्टर फुर्सत में था
उसने खड़े होकर मुझे नमस्कार किया
सीट पर आकर हालचाल पूछा
टिकट दिया
पता पूछा
और ठीक मुझे घर के दरवाज़े पर छोड़ा
हालाँकि सड़क कच्ची थी और गली पतली

कंडक्टर मेरे पीछे-पीछे उतरा
उसने मुझे विदा करते हुए
फिर से नमस्कार किया
और जब तक मैं घर के अन्दर चला नहीं गया
उसने बस को खड़ा रखा

बस आगे बढ़ी
एक बूढ़ा लाठी टेकता जा रहा था
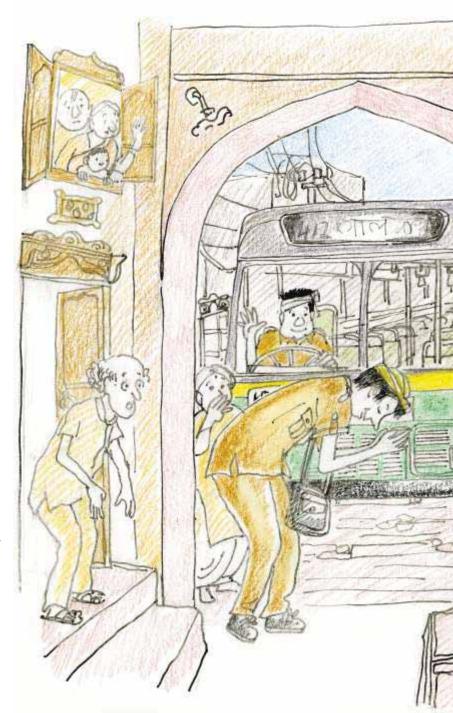
ड्राइवर ने पूछा, "बाबा कहाँ जाना है?
कश्मीरी गेट?"

बूढ़े को तो कल्याणपुरी जाना था
ड्राइवर ने कहा,
"तो चलिए
बस अब वहीं जाएगी।"

कंडक्टर ने उससे पानी और चाय के लिए पूछा
बूढ़े ने निगाहों से प्रश्न किया,
"क्या इसके पैसे लगेंगे?"

ड्राइवर ने कहा, "बाबा फिक्र न करें
बुज़ुर्गों के मुफ्त के टिकट में यह भी शामिल है।"

बूढ़े ने रास्ते में उतरने के लिए
बस रोकने को कहा डरते-डरते

बस रुकी
कंडक्टर ने नीचे उतरने में बूढ़े की मदद की

रास्ते में एक बच्चा मिला
बच्चे से ड्राइवर ने पूछा,
"कहो बेटा कैसे हो?
बस में घूमोगे?"

बस में बच्चा घूमना चाहता था-
एक दिन एकदम खाली बस में घूमना
धमाचौकड़ी मचाते हुए हर जगह को पहचानना
और ढेर-सी टॉफियाँ खाना

कंडक्टर और ड्राइवर से
वह इतना घुल-मिल गया
कि उसने नए जूते, नई पैंट
नई शर्ट और नई कँघी की फरमाइश कर दी

कंडक्टर के अनुसार बच्चों के मुफ्त के टिकट में
ये भी शामिल है

बच्चे को देखा इस तरह झूमते-गाते
तो एक तितली ने बस में घुसना चाहा

ड्राइवर ने उसके लिए बस धीमी की

तितली बस में बच्चे के सिर, कँधे, हाथ पर बैठी
कंडक्टर के बैग पर बैठी
बस में स्टेयरिंग पर बैठी
उड़ने लगी बस में बच्चे के साथ-साथ
उसके सिर के ठीक ऊपर-ऊपर

लोधी गार्डन आया
तो तितली दरवाज़े पर आई
ड्राइवर ने बस धीमी की
वह उतरी
वह एक पौधे पर जाकर बैठी

तीनों उसे देख मुस्कराते रहे
फिर बस चली

आज बस में घूमते-घुमाते
ड्राइवर पर नशा-सा छा गया था
वह एक कोने में बस रोककर
सीट पर लेट गया

दूसरी बस आई
उसके कंडक्टर ने इन तीनों को
सादर अपनी बस में बैठाया
इन्हें नींबू का शरबत पिलाया
बस में सोने की जगह बनाई
चादर-तकिया और कम्बल दिया
उस बस के ड्राइवर को लेटाया

उस नई बस में था एक जवाँ दिल ड्राइवर
रूसियों सा मोटा, हँसमुख
एक फुर्तीली कंडक्टर

बस रेल-सी चल रही थी
ना दचका, न झटका
कंडक्टर तीनों की हरकतों पर
मुस्करा रही थी

इस बस में पुरानी बस के ड्राइवर की
तीमारदारी हो रही थी
बच्चे की जिज्ञासाएँ पूरी की जा रही थीं
पुराना कंडक्टर बना हुआ था बच्चे का दादा
उसे किस्से पर किस्से सुना रहा था
ड्राइवर, दोनों कंडक्टर और बच्चा
साथ मिलकर गाना गा रहे थे

बच्चे ने बस से उतरने से बिलकुल मना कर दिया
अपने घर का पता बताने से इनकार कर दिया
बस चलती रही, चलती रही
बच्चा उसी में बड़ा हुआ

लेकिन यह क्या

उनींदा गाँव

मुकेश नौटियाल
चित्रः ऋषि साहनी

रुद्रपुरी के बस स्टॉप पर उतरकर पता चला कि समय ज़्यादा हो गया है और बचे आधे दिन में ऊँचागाँव नहीं पहुँचा जा सकता। जेठ महीने की वह रात मैंने उस पहाड़ी बस्ती की छोटी-सी सराय में बिताई। बस्ती राष्ट्रीय राजमार्ग पर आबाद पाँच-सात दुकानों के बीच बसी थी। अगली सुबह मैंने ऊँचागाँव की चढ़ाई नापना शुरू किया।

चार फुट चौड़ी उस पहाड़ी पगडण्डी पर चारेक मील की दूरी नापने के बाद बसायतें दिखनी बन्द हो गईं। पगडण्डी भी सँकरी होकर बमुश्किल डेढ़ेक फुट बची थी। चारों ओर चीड़ का गहरा जंगल था। सूखी पत्तियों से रास्ता अटा पड़ा था। उस पर ज़बरदस्त फिसलन थी। पगडण्डी के दाहिने ओर पहाड़ और बाएँ ओर गहरी घाटी थी। मैं अपने पँजों को पगडण्डी पर धँसाकर चल रहा था।

आखिरकार चीड़ का जंगल खत्म हुआ और बाँज-देवदार का जंगल शुरू हो गया। रुद्रपुरी में मुझे बताया गया था कि जब बाँज-देवदार नज़र आने लगें तो समझना कि ऊँचागाँव दूर नहीं है। ऊबड़-खाबड़ पगडण्डी बता रही थी कि सालों से उस पर कोई चला नहीं है। झाड़ियों में रास्ता बनाते-बनाते मेरे हाथों में जाने कितने काँटे चुभ गए थे। वहाँ या तो पंछियों का कलरव सुनाई दे रहा था या फिर बहती हवा की साँय-साँय। बीच-बीच में जब काकड़ बासते तो मैं घबरा जाता था। हिमालयी मृग काकड़ बाघ का पसन्दीदा शिकार होते हैं। और जहाँ बाघ हों वहाँ भालुओं की बसायत लाज़मी है।

शाम ढलने लगी थी। अँधेरा घिरने से पहले मुझे हर हाल में ऊँचागाँव पहुँच जाना था। मेरे कदम लड़खड़ाने लगे थे। यह अन्दाज़ भी नहीं था कि अभी कितना और चलना है। घबराहट में मेरे कदमों की गति बढ़ गई थी। डूबते सूरज के सिन्दूरी रंग से नहाया पश्चिम का आकाश इशारा था कि रात बहुत दूर नहीं है।

अचानक उस बियाबान की शान्ति को तोड़ती घण्टियों की आवाज़ मेरे कानों में गूँजी। एक बार तो मैं घबराकर जहाँ था वहीं थम गया। फिर देखा कि गायों का एक झुण्ड वहाँ से गुज़र रहा है। गाएँ मुझे देख कुछ पल रुकीं। मुझे निहारने के बाद उन्होंने एक-दूसरे को देखा, हवा में कान हिलाए और आगे बढ़ने लगीं। यानी अब ऊँचागाँव करीब है। मैं गायों के पीछे हो लिया।

चलते-चलते शाम ढल गई। वह पूनो की रात थी, सो चाँद की रोशनी में रास्ता नज़र आ रहा था। जगह-जगह पेड़ों की छाया मुश्किल पैदा कर रही थी। लेकिन मैं गायों के खुरों का पीछा करते हुए चलता रहा।

आखिरकार, मैं जहाँ पहुँचा वहाँ मलबे के कई टीलों के बीच पहाड़ी शैली का एक पुराना दो-मंज़िला जर्जर मकान नज़र आ रहा था। मैं उस घर की तरफ बढ़ ही रहा था कि एक भारी स्वर सुनाई दिया, "कौन हो भाई......?"

"मैं हूँ .....राहगीर।"

"नमक लेकर आए हो क्या?"

"जी हाँ.....।"

रुद्रपुरी से छठी-छमाही में कोई आकर देवसिंह ऊँचावाल को नमक और ज़रूरत के दूसरे समान दे आता था। उसकी असल ज़रूरत नमक ही होती थी। बाकी अपने गुज़ारे लायक मोटा अनाज और आलू-प्याज़ तो वह गाँव में ही पैदा कर लेता था।

मैंने चारों तरफ देखा। वहाँ कोई नज़र नहीं आया। देवसिंह ऊँचावाल शायद मलबे के किसी ढेर के पीछे रहा होगा।

"घर चलो... मैं पानी लेकर आता हूँ।" चाँदनी रात में मैं उस घर के अहाते में दाखिल हुआ तो चौक पर बैठे एक विशाल भोटिया कुत्ते से मेरा सामना हुआ। मुझे देखकर वह न अपनी जगह से हिला, न भौंका। पर शेर जैसे उस कुत्ते ने मेरे कदम रोक दिए। मैं जहाँ था वहीं खड़ा रह गया।

तभी काँधे पर गगरी थामे देवसिंह चौक में दाखिल हुआ।

"अन्दर चलो। बाहर ठण्ड है।"

देवसिंह ने आलू उबाले, रोटी के नाम पर चार मोटे टिक्कड़ बनाए। दो टिक्कड़ मेरे हिस्से आए, दो उसके। भूख इतनी लगी थी कि मुझे खाना बहुत स्वादिष्ट लगा।

अब सोने की बारी थी। कमरे में बिछी एक दरी

पर लेटकर मैंने कम्बल ओढ़ लिया। दूसरी तरफ एक दरी पर देवसिंह ऊँचावाल लेट गया। मैं इतना थक चुका था कि लगता था जहाँ बिछूँगा, वहीं नींद आ जाएगी। लेकिन फिर याद आया कि ऊँचागाँव में रात जागने के लिए होती है। अचानक मेरी नींद गायब हो गई। देर तक करवटें बदलता रहा। गहराती रात में भी ऊँचागाँव की चिड़ियाएँ चहक रही थीं। सियारों का रुदन बढ़ता जा रहा था। बीच-बीच में झींगुरों के स्वर और देवसिंह की खाँसी कमरे की चुप्पी को भंग देते थे। बीच रात में पेशाब करके लौटे देवसिंह ने कहा, "ज़रा देर और जाग लो। सप्तऋषि डूबने वाले हैं। फिर पौ फटेगी।"

और सचमुच कुछ देर बाद अँधेरा छँटने लगा। खिड़की से हलका उजाला कमरे में आया तो मैं बाहर निकला। चिड़ियों का कलरव अब शान्त हो चुका था और देवसिंह के छज्जे में उल्लू उतर आए थे। सामने पंचाचूली की चोटियाँ चाँदी-सी चमक रही थीं।

मैं उस उजाड़ गाँव में घूमने निकल गया। गाँव के छोर पर धारे से बदस्तूर बहता पानी नीचे जाकर एक ताल में समाता था। ताल के चारों तरफ बिखरे गोबर के बीच बालों से भरा अपशिष्ट भी नज़र आ रहा था। मैं समझ गया कि धारे के पानी से बना ताल केवल पालतू डंगरों के लिए ही नहीं, बाघ-सियार जैसे जंगली जानवरों की भी प्यास बुझाने का एकमात्र

स्रोत है। ताल में तैरती मछलियाँ आकार में खासी बड़ी थीं। लगता था जैसे मुद्दत से उस ताल में आबाद हों। ताल के एक छोर पर पत्थरों की बेडौल आकृति के ऊपर जर्जर बाँस के शीर्ष पर लटका बेरंग ध्वज का चीथड़ा संकेत देता था कि कभी वहाँ ऊँचागाँव वालों के ग्राम-देवता विराजमान रहे होंगे। गाँव घूमने के बाद मैं देवसिंह के बसेरे पर लौट आया।

सालों पहले ऊँचागाँव में पचासेक परिवारों की बसायत थी। अपने काम-धँधे में उलझे लोगों ने कभी इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया कि वे दरअसल उनींदे हैं। उनको लगता था कि समूची दुनिया ही कम, बहुत कम सोती है। लेकिन असल में ऐसा नहीं था।

सपनीला गाँव की निद्रा जब ब्याह कर ऊँचागाँव आई तो उसका माथा ठनका। अपने गाँव में वह सोती रहती थी लेकिन ऊँचागाँव में आते ही उसकी नींद उड़ गई। दिन भर वह जंगल में घास काटती, खेतों में हाड़-तोड़ मेहनत करती, खूब खाना खाती। लेकिन जब सोने की बारी आती तो उसकी आँखों से नींद उड़ जाती। जानकर वह दंग रह गई कि उसके पति, सास-ससुर, जेठ-जेठानी और उनके बच्चे भी करवटें बदल-बदलकर रात काट रहे हैं। उसने पास-पड़ोस में पूछताछ की तो पता चला कि कोई भी नहीं सो रहा है। सब जागकर पौ फटने की बाट जोह रहे होते हैं। एक-आध घण्टे के लिए किसी की आँख लग गई तो बात अलग है। दिन में भात खाकर सुस्ताते लोग झपकियाँ ले लिया करते थे लेकिन उसको सोना तो नहीं कहा जा सकता था!

यह ठीक-ठीक पता नहीं कि ऊँचागाँव के लोग पहले से ही नहीं सो रहे थे या बाद में अनिद्रा के शिकार हुए। लेकिन मुखिया बागसिंह की बहू निद्रा जब एक बार मायके गई तो फिर वापस नहीं लौटी। उसने उनींदे गाँव लौटने से साफ मना कर दिया। फिर क्या था? आसपास के गाँवों में भी यह बात फैल गई कि ऊँचागाँव उनींदा रहने के लिए अभिशप्त है। इस खबर का असर इतनी तेज़ी से हुआ कि ग्रामवासियों के रिश्तेदारों ने ऊँचागाँव आना छोड़ दिया। जिन युवकों की मँगनियाँ हुई थीं उनके रिश्ते टूट गए और गाँव वाले अनेक तरह के भ्रम के मकड़जाल में फँसने लगे। उन्होंने मान लिया कि वे वर्षों से उनींदे हैं। यह स्वीकार करते ही उनको महसूस हुआ कि उनके पेट बुरी तरह सूख गए हैं और उनकी आँखों में भारी सूजन है। उन्होंने महसूस किया उनके सिरों में भारीपन घर कर गया है। इससे वे गुस्सैल हो गए हैं।

गाँव से पलायन शुरू हो गया। सबसे पहले मुखिया भागसिंह ऊँचावाल ने अपने कुनबे के साथ गाँव छोड़ा। फिर दानसिंह ऊँचावाल ने, उसके बाद थानसिंह ऊँचावाल, पान सिंह ऊँचावाल, मानसिंह ऊँचावाल। सभी परिवार धीरे-धीरे गाँव छोड़ कर चले गए। गाँव में अकेला बचा रह गया देवसिंह ऊँचावाल।

देवसिंह ऊँचावाल का न घर था, न परिवार। बचपन में ही वह अनाथ हो गया था। उसके पिता तरलोक सिंह ऊँचावाल ने सूदखोर दानसिंह ऊँचावाल से काफी कर्ज़ा उठा लिया था। तरलोक सिंह की मृत्यु के समय देवसिंह पाँच साल का था। उसकी बीमार माँ भी कर्ज़ तले दबकर चल बसी। दानसिंह ने उसका खेत और घर हड़प लिया। देवसिंह उसके घर बँधुआ नौकर बन कर रह गया।

गाँव का उजड़ना देवसिंह के लिए वरदान साबित हुआ। अनायास वह समूचे गाँव का मालिक बन बैठा था। गाँव छोड़कर जाते लोग अपना घर, खेत-

खलिहान और बूढ़े पशु उसको सौंप गए। उसके पास अब इतना काम था कि दिन-रात का पता ही नहीं चलता था। पहली बार उसको सम्पति के मालिकाना हक का सुखद एहसास हो रहा था। अकेले दम पर वह गौशालाओं से लेकर खेतों तक का काम कर रहा था।

यूँ ही कई साल बीत गए। देवसिंह को महसूस होने लगा कि बहुत दिनों तक वह अकेले ही सब कुछ नहीं सँभाल पाएगा। कुछ घर टूटने लगे थे। कुछ पशु देख-रेख के अभाव में मरने लगे थे। उसने बहुत कोशिश की कि उसका ब्याह हो जाए। लेकिन ऊँचागाँव में अपनी बेटी ब्याहने को कोई तैयार नहीं हुआ।

देवसिंह की उमर बढ़ रही थी। मलबे के ढेर में बदलते घरों को बचाना अब मुश्किल हो चला था। शानदार नक्काशीदार लकड़ी की तिबारियाँ, आलीशान खोलियाँ और पटालों से सँवारी गई छतें उसकी आँखों के सामने ढह रहे थे। उसने गाय, भैंस, बकरियों को आज़ाद कर दिया। कुछ पशु बाघ के शिकार बनते रहे। लेकिन ज़्यादातर चरने जाते और शाम को अपने ठीयों पर लौट आते थे।

निन्यानवे साल के देवसिंह ऊँचावाल से विदा लेकर मैं वापस लौट आया। लेकिन कहानी अभी बाकी है।

सपनीला गाँव की निद्रा नोएडा में मेरी पड़ोसी है। उसने बताया कि उसका ब्याह बहुत छोटी उम्र में उसकी मर्ज़ी के बगैर बागसिंह के बेटे से कर दिया गया था। अपने भाई-बहनों की याद में वह देर रात तक जागती और रोती रहती थी। उसके ससुराली भी उस पर नज़र रखने के लिए जागते रहते थे। वह वापस लौटना चाहती थी। एक बार वह मायके आई तो उसने ससुराल लौटने से इंकार कर दिया। यह कहकर कि ऊँचागाँव उनींदा रहने के लिए अभिशप्त है। वहाँ रात को कोई सो नहीं पाता। यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी नहीं।

यहीं से बात बिगड़ गई। इलाके में इसकी खूब चर्चा हुई। और बाद में इसी बात ने ऊँचागाँव वालों की नींद उड़ा दी।

उस रात मैं भी यही देखने के लिए जागता रहा कि देवसिंह को नींद आती है कि नहीं। वह भी शायद यह देखना चाहता हो कि ऊँचागाँव में बाहरी भी उनींदा ही रहेगा? रही बात रात में पशु-पक्षियों के शोरगुल की तो किसी रात जागकर देखिए। हमारे सोने के साथ जगत नहीं सो जाता। अनेक पंछी गहरी रातों में भी आसमान नापते हैं। कुछ जानवर रात को सक्रिय होते हैं। रात दरअसल उतनी शान्त नहीं होती जितनी हम समझ लेते हैं। बहुत कुछ जो दिन में नहीं घटता वह रात में होता है।

इतने साल बाद आज भी ऊँचागाँव में बूढ़ा देवसिंह जाग रहा है। इधर नोएडा में निद्रा भी नहीं सो पा रही है। उसे एक झूठ खाए जा रहा है। और मैं यह कहानी जानकर बेचैन हूँ।

तो....तीन लोग अभी भी जाग रहे हैं। मैं, ऊँचागाँव में देवसिंह और नोएडा में निद्रा। आप सो जाइए।

1 पेड़ों की पत्तियाँ बीस मीटर तक लम्बी हो सकती हैं। जैसे राफिया पाम और अमेज़न का बम्बू पाम (इसकी पत्तियाँ 20 मीटर लम्बी होती हैं।) तुमने सबसे बड़ी पत्ती वाला कौन-सा पेड़ देखा है? उसकी लम्बाई कितनी होगी?

2 क्या ये दो त्रिकोण समरूप हैं?

3 एक आदमी के सिर पर औसतन 150,000 बाल होते हैं। महीने में आदमी के लगभग 3000 बाल झड़ते हैं। किसी आदमी के एक बाल की उम्र कितनी होगी?

4 एक दस रुपए के नोट की लम्बाई कितनी होगी?

5 नौ अंकों की संख्या लिखो जो 11 से भाग हो सके लेकिन उसका एक भी अंक दोहराए नहीं।

6 आँखों से देखा जा सकने वाला सबसे छोटा जीव जिसकी रीढ़ की हड्डी होती है?

7 एक हवाई जहाज़ दिल्ली से उत्तर की ओर उड़ा। 500 किलोमीटर के बाद वह पूर्व की तरफ मुड़ गया। फिर 500 किलोमीटर उड़ने के बाद वह दक्षिण दिशा में मुड़ गया। फिर 500 किलोमीटर बाद पश्चिम की ओर मुड़ा। इस दिशा में भी उसने 500 किलोमीटर की उड़ान भरी. ये हवाई जहाज़ दिल्ली से किस दिशा में उतरा होगा?

8 दिसम्बर शब्द ग्रीक के डेका (यानी 10) से बना है। फिर साल के 12वें महीने को दिसम्बर क्यों कहते हैं?

9 इंसानों के अलावा ऐसा कौन-सा जीव है जो हर साल सबसे बड़ी संख्या में लोगों की मौत का कारण बनता है?

2. हाँ, 3. चार साल से कुछ ज़्यादा, 5. 102,347,586 (एक से ज़्यादा उत्तर सम्भव हैं।)
6. मेंढक, 7. दिल्ली से पूर्व दिशा में, 9. मच्छर

आँधी

इस्माइल मेरठी
चित्रः तापोशी घोषाल

रात हुई तारीकी छाई, मीठी नींद सभी को आई।
मुन्नू सोया अप्पा सोई, अब्बा सोये अम्मी सोई।
आधी रात हुई जब सोते, खर खर खर खर्राटे भरते।
चुपके-चुपके आँधी आई, गर्द गुबार उड़ाती लाई।
चली हवायें सुर सुर सुर सुर, कागज़ उड़ गये फुर फुर फुर फुर।
खड़ खड़ खड़ खड़ पत्ते खड़के, डरने वालों के दिल धड़के।
बजने लगे किवाड़े खट खट, घर वाले सब जागे झटपट।
खटपट सुनकर मुन्नू जागा, उठकर झटपट अन्दर भागा।
आँधी ने फिर ज़ोर दिखाया, फूस का छप्पर दूर गिराया।
टीन उड़ाई पेड़ गिराये, खपरे भी छत के सरकाये।
शाखें टूटीं तड़ तड़ तड़ तड़, बादल गरजे गड़ गड़ गड़ गड़।
बिजली चमकी चम चम चम चम, बूँदें टपकीं कम कम थम थम।
लेकिन वह बूँदें थीं कैसी, पट पट पट पट ओले जैसी।

मन की छाप

कृष्ण कुमार

इस्माइल मेरठी की कविता 'आँधी' यदि आपने ध्यान से चुपचाप बैठकर नहीं पढ़ी है तो आप यह जानने का दावा नहीं कर सकते कि आँधी कैसे आती है। प्राकृतिक घटनाएँ कैसी भी हों, धीमी या तेज़, वे हमें इतनी प्राकृतिक या स्वाभाविक लगती हैं कि हम उनके आने या गुज़रने के अन्दाज़ को व्यवस्थित रूप से न तो स्वयं देख सकते हैं, न किसी को बता सकते हैं। सुबह या शाम का होना, चाँद का निकलना बहुत धीमी गति से होने वाली घटनाओं के उदाहरण हैं। मगर दोनों ही किस्म की घटनाएँ वर्णन की दृष्टि से अच्छी खासी मुश्किल पेश करती हैं।

इस मुश्किल को समझने में इस्माइल मेरठी की यह पुरानी कविता हमारी मदद करती है। आजकल हर मुश्किल को चुनौती कहने का चलन हो गया है, इस वजह से मुश्किल को कायदे से समझना या समझाना भी मुश्किल हो गया है। सारा फोकस चुनौती देने और लेने वाले की सफलता पर रहता है। इस परिस्थिति में 'आँधी' जैसी कविता को धीरे-धीरे पढ़कर हम इस प्राकृतिक घटना का वर्णन करने की दिक्कतों को बारीकी से देखकर महसूस कर सकते हैं। एक कठिनाई है प्रकृति की आवाज़ों को शब्दों में पकड़ने की। 'आँधी' में पत्तों, पेड़ों, कागज़ों, छतों के टीन से लेकर हवा, धूल और यहाँ तक कि नींद टूटने की आवाज़ें कवि ने पकड़ी हैं या शब्दों और अर्धशब्दों के ज़रिए बनाई हैं। कविता को पढ़ने में हम चार मिनट लेते हैं और इतने समय में एक और ही संसार में जा पहुँचते हैं। यह आधी रात की आँधी का संसार है। वह अन्ततः ओलों में बदलकर हमसे विदा लेता है और हम महसूस करते हैं कि अब मुन्नू और उसके माता-पिता दोबारा सोने लगे होंगे। आँधी के गुज़र जाने के बाद पहली पंक्ति वाली रात और तारीकी तो वापस नहीं आ सकती, टूटी हुई नींद ही रात की निरन्तरता बहाल कर सकती है।

अब हम कवि की एक और मुश्किल भाँप सकते हैं। वह एक तेज़ रफ्तार वाली, शोर और झटका पैदा करने वाली घटना का बयान हर इंसान को आराम और शान्ति देने वाली रोज़ आने वाली नींद के चौखटे में रखकर कर रहा है। एक तरफ एक असाधारण यानी कभी-कभार होने वाली घटना है; दूसरी तरफ रोज़ाना का अनुभव है। दोनों को जोड़ने के प्रयास में कवि एक माहौल रचता है। बहुत से पाठक इस माहौल से व्यक्तिगत रूप से परिचित न भी हों, वे इस कविता को पढ़ते हुए अपने इस अपरिचय से कतई परेशान नहीं होते। कोई माहौल कितना ही पुराना या दूर हो, कविता उसे हमारी आँखों और त्वचा पर उतार लाती है। इस तरह वह हमारी नींद तोड़ती है और आम चीज़ों में कुछ ऐसा दिखा देती है जो हमें दिखाई नहीं दिया था। वह हमारी निगाह और अनुभव को विस्तार देती है। अगली बार आँधी आने पर हम इस कविता को पढ़ चुकने के कारण कई नई आवाज़ें सुनेंगे, अपने आसपास के पेड़ों या उनकी अनुपस्थिति को महसूस करेंगे, भले इस कविता के कवि का नाम भूल चुके हों। कविता की छाप हमारी चेतना पर पड़ चुकी होगी।

लोककथा

पुनर्लेखनः प्रभात
चित्रः चन्द्रमोहन कुलकर्णी

कदली बन की हरी हवाओं में एक गाय और एक बाघिन की गहरी दोस्ती हो गई। वे मेघ ढँके आसमान के नीचे एक दूसरे के गले लग बैठी रहतीं। कभी साँवली धूप के उजास में टहला करतीं। दोनों का खाना अलग था। केवल खाने के समय ही वे थोड़े समय के लिए बिछुड़ा करतीं। बाघिन घाटी में चरते हिरनों के टैने में शिकार करने जाती। गाय तोतिया रंग की घासों में चरने चली जाती। खाने के बाद दोनों टीला चढ़ते हुए एक दूसरे से फिर मिल जातीं। थोड़ा सुस्ताने के बाद साथ-साथ झरने पर पानी पीने जातीं।

एक दिन जब वे झरने पर पानी पी रही थीं तो गाय के मुँह का फेन पानी पर बहता बाघिन के मुँह तक आ गया। बाघिन को गाय के मुँह का फेन बहुत मीठा लगा। वह इस स्वाद, इस रस के बारे में सोचती ही रह गई।

बाघिन मन ही मन सोचने लगी, "जब गाय के मुँह का फेन इतना मीठा है तो आह! इसका मांस कितना मीठा होगा।"

अब वे पहले की तरह ही अठखेलियाँ तो करतीं लेकिन बाघिन के मन में गाय के मुँह के मीठे फेन की बात बनी रहती। कुछ समय के बाद बाघिन ने एक भूरे रंग के धारीदार शावक को जन्म दिया। गाय ने भी दही जैसे सफेद बछड़े को जन्म दिया। बछड़े का सिर कृष्ण मृगों सरीखा मुलायम काला था। शावक और बछड़ा दोनों साथ-साथ खेलते कूदते, मस्ती करते। बारिश के बाद के दिनों में वे सफेद फूलों वाले हरे कांस के मैदानों में लुकाछिपी खेला करते थे।

एक चाँदनी रात में अवसर देखकर बाघिन गाय पर टूट पड़ी। गाय कह ही रही थी कि देखो उजली चाँदनी में हमारी छायाएँ कितनी सुन्दर दिख रही हैं। इतने में तो बाघिन ने गाय की गर्दन तोड़ दी। गाय आँखें फैलाते हुए ज़मीन पर ढेर हो गई।

बाघिन जब शावक के पास आई तो उसने पूछा, 'गाय कहाँ है?' बाघिन बोली, 'पेट नहीं भरा होगा। आती होगी कहीं से चरती हुई।' बाघिन का शावक बोला, "जब तक मेरे दोस्त की माँ नहीं आ जाती मैं दूध नहीं पीऊँगा।" बाघिन ने बच्चे को बहुत समझाया। अन्त में बाघिन का बच्चा बोला, "माँ एक काम करो मेरे दोस्त के लिए थोड़ी सी हरी-हरी घास लाकर दे दो। फिर मैं दूध पी लूँगा।" बाघिन ने ऐसा ही किया।

एक दिन बाघिन का बच्चा जंगल में घूम रहा था। उसे एक मैदान में किसी मरे हुए जानवर का कंकाल दिखाई दिया। वह पास जाकर देखने लगा। जानवर के मुँह और सींगों को देखकर वह पहचान गया कि यह तो उसके दोस्त की माँ का कंकाल है। अब उसने मान लिया कि उसका दोस्त बिन माँ का हो गया है। यह जानकर उसे बहुत दुख हुआ।

एक शाम बाघिन का बच्चा अपने दोस्त के लिए एक घण्टी लाया। उसने वह घण्टी उसके गले में बाँध दी। "सुन्दर लग रही है ना।" उसने दोस्त से पूछा और कहा, "आज के बाद तुम पर जब भी कोई मुसीबत आए तुम इस घण्टी को बजाना। मैं उसी पल तुम्हारी मदद के लिए आ जाऊँगा।"

"वैसे मुझ पर क्या मुसीबत आएगी? पर तुम कहते हो तो ठीक है।" ऐसा कहते हुए बछड़े ने उस सुन्दर बनावट और सुन्दर बजने वाली घण्टी को अपने गले में सजाए रखा।

सर्दियों की एक दोपहर, कोहरे को हटाते हुए धूप घास के मैदानों पर गुनगुनाहट बनकर फैली हुई थी। शावक और बछड़ा धूप में मस्ती कर रहे थे। बछड़े के गले की घण्टी की मधुर गूँज दूर दूर तक जाती। विशाल बाघिन बैठी हुई यह संगीतमय खेल देख रही थी। उसके मन में एक विचार ने अच्छी खासी जगह बना ली थी। वह आलस से जबड़े फाड़ते हुए मन ही मन कह रही थी, "इस बछड़े की माँ के मुँह का फेन कितना मीठा था। उसका मांस और भी मीठा था। आह यह नाज़ुक बछड़ा तो न जाने कितना मीठा होगा?" वह बार-बार अपने विशाल जबड़े को आलस में खोलने बन्द करने लगी। फिर उसने अपने शावक को पास बुलाया और कहा, "अब तो तुम भी शिकार करने लग गए हो। भूख लगी होगी! जाओ आज के लिए कोई शिकार कर लाओ।" बाघ का बच्चा शिकार की तलाश में निकल गया।

शावक के जाने के बाद बाघिन धीमे-धीमे कदम बढ़ाती हुई बछड़े की तरफ बढ़ने लगी। बछड़े को उसकी आँखों में हिंसा दिखाई दी। वह भय से काँप उठा। पूरी ताकत लगाकर उस तरफ दौड़ने लगा जिस तरफ उसका दोस्त गया था। बाघ शावक हरी हवाओं में बजती घण्टी की आवाज़ की तरफ दौड़ता हुआ आया। वह अपनी पूरी ताकत लगाकर दौड़ रहा था। जंगल में एक जगह पर आकर तेज़ गति से दौड़ते हुए बछड़े का पीछा करती बाघिन ने बछड़े की गर्दन को जबड़े में ले लिया। उसी दम बाघिन के बच्चे ने भी अपनी माँ की गर्दन को जबड़े में ले लिया। वह अपनी माँ की पीठ पर सवार हो गया था।

बाघिन ने बछड़े की गर्दन छोड़ दी। बछड़ा हाँफता हुआ दूर चला गया। बाघिन के बच्चे ने भी माँ की गर्दन छोड़ दी। बाघिन गर्दन नीची कर जंगली

घासों में चली गई। कुछ ही पल में वह ऊँची घासों के सुनहरे बियाबान में गुम हो गई।

बाघ का बच्चा अपने दोस्त के पीछे-पीछे आ गया। "अब हम यहाँ नहीं रहेंगे। हम इस जंगल में अपना एक नया इलाका बनाएँगे।" उसने बछड़े से कहा।

बछड़ा और बाघ का बच्चा खूब थके थे। वे दोनों जंगल के परबत, घाटी और दर्रों को पार करते जा रहे थे। रास्ते में एक बरसाती नाला आया। नाले में नीला पानी बह रहा था। दोनों किनारे पर खड़े होकर पानी पीने लगे। थके-हारे बछड़े के मुँह से फेन के फूल उतर कर पानी पर फिसलते हुए बहने लगे। बछड़े के मुँह से उतरा फेन बहता हुआ बाघ शावक के मुँह को आकर लग गया, "ओह! कितना मीठा है। आह! कितना मीठा फेन!" बाघ शावक ने मन ही मन कहा।

उसने बछड़े की तरफ ऐसी नज़र से देखा, ऐसा इससे पहले कभी नहीं देखा था।

नदी, जंगल, पानी, परिन्दे और हम...

आशीष कोठारी
चित्रः अबीरा बंधोपाध्याय
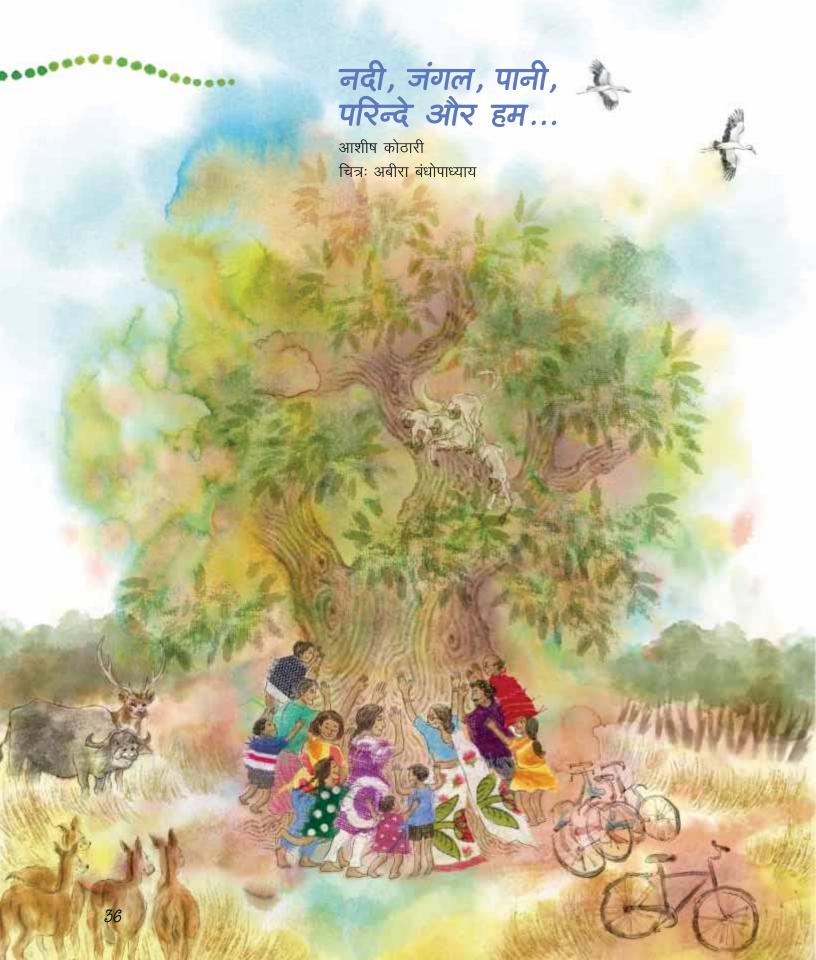
मुझे बचपन से ही जानवरों से लगाव था - न केवल घर के कुत्ते-बिल्ली से, सड़क के गधे-गाय से भी। उन्हीं दिनों मैं राजस्थान के भरतपुर पक्षी अभ्यारण्य गया। यहाँ तरह-तरह के पक्षियों को देखा। इस अनुभव से जंगली जानवरों के प्रति भी मेरा रुझान जागा।

उन दिनों में दिल्ली के एक स्कूल में पढ़ रहा था। यह खबर मैं और मेरे दोस्तों तक पहुँची कि अरब देशों के कुछ शाही लोगों को भारत सरकार ने पक्षियों का शिकार करने की अनुमति दी है। हम सबको बहुत गुस्सा आया। हमने अगले ही दिन सऊदी अरब दूतावास के सामने प्रदर्शन किया। हमारे और विश्नोई समाज के लोगों के विरोध की वजह से सरकार ने शिकारियों को वापिस जाने को कहा। विश्नोई समुदाय ने 300 साल पहले पेड़ काटने का बेमिसाल विरोध किया था। राजा ने सैकड़ों पेड़ काटने का आदेश दिया था। विश्नोइयों को यह मंजूर नहीं था। वे जाकर उन पेड़ों से चिपककर खड़े हो गए। इस विरोध में 363 विश्नोइयों ने अपनी जान दे दी। एक मशहूर अभिनेता के शिकार को सामने लाने में भी इसी समुदाय की बड़ी भूमिका रही।

स्कूल से हम लोग अकसर दिल्ली के 'रिज वन' (जो अरावली पहाड़ी श्रृंखला का अंश है) में सैर करने और पक्षियों को देखने जाते थे। हम तबाह होते जंगल देखते थे। सड़क बनती, मकान बनते या कुछ नहीं तो कचरे के ढेर से इन्हें बहुत नुकसान पहुँचा। उन दिनों लगा कि हम प्रकृति को सिर्फ अपने मज़े के लिए इस्तेमाल करते हैं। उसे बनाए रखने में हमारी कोई भूमिका होनी चाहिए। और फिर इसी प्रकृति की वजह से हमारा जीवन है। जैसे, इसी तथ्य को लें कि पृथ्वी का तीन चौथाई ऑक्सीज़न समुद्र के सूक्ष्म जीव पैदा करते हैं।

1979 में हमने 300 युवाओं के साथ एक रैली की। सरकार को ज्ञापन दिया। कि वो रिज जंगल बचाने की तरफ ध्यान दे। इसी दौरान समझ आया कि इस काम को संगठित रूप से किया जाना चाहिए। इसी से कल्पवृक्ष संस्था के बनने का रास्ता खुला।

80-81 में कल्पवृक्ष के साथियों ने टिहरी गढ़वाल की पदयात्रा की। वहाँ गाँव-गाँव जाकर हमने चिपको आन्दोलन को जाना। इस आन्दोलन को ज़मीनी स्तर पर महिलाओं ने खड़ा किया था। हिमालय के जंगलों के बचाने की आवाज़ उठाई थी। महिलाएँ अकसर पर्यावरण को सँवारने, सहेजने में आगे रही हैं। शायद वे बेहतर समझती हैं कि जीवन चलाने के लिए ज़मीन, जंगल और नदी कितनी अहम है। खासतौर पर गाँव में महिलाओं का सम्पर्क इन सबसे सीधा है।

किसी जगह जाकर उस जगह के बारे में ज़्यादा साफ और गहरी समझ बन पाती है। ऐसी एक यात्रा 1983 की गर्मियों में नर्मदा घाटी की याद आती है। हम लोग 50 दिनों तक पैदल-नाव-बस से इस पूरे इलाके को छानने निकले थे। हमने 1300 किलोमीटर की यात्रा की थी। कहीं पाट बहुत फैला हुआ था। वहाँ पानी थमकर बह रहा था। कहीं पाट बहुत सँकरा था। वहाँ पानी तेज़ गति से बह रहा था। झरने मिले। घाटियाँ मिलीं। कहीं प्रागैतिहासिक चट्टानें नर्मदा के किनारे मिलीं। कहीं संगमरमर की चट्टानें मिलीं। नर्मदा को देखकर बार-बार उसके

साथ चलते विशाल संसार का अहसास होता था। पर्यावरण का अर्थ समझ आ रहा था। प्रकृति, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, मिट्टी, पहाड़, नदियाँ...ये सब आपस में जुड़ा है।

इसी यात्रा से अहसास हुआ कि कैसे बाँध लाखों लोगों को अपनी ज़मीन से उखाड़ फेंकता है। अपने घर से, अपनी ज़मीन से। हज़ारों हेक्टेयर जंगल और वहाँ बसने वाले असंख्य जीव कैसे बाँध की चपेट में आकर ही रहते हैं। इस यात्रा ने मुझे एक सवाल के साथ छोड़ दिया था। सवाल कि यह कैसा विकास जिसमें इतनी तबाही होगी?

कई जगहों पर ऐसे काम हो रहे हैं जो रास्ता दिखा रहे हैं। कुछ स्थानों पर आदिवासी समाजों ने ऐलान किया है कि वे अपने गाँव के फैसले खुद लेंगे। ताकि अपनी संस्कृति और पर्यावरण को देखकर निर्णय लिए जा सकें। महिलाओं ने बड़ी संख्या में उन इलाकों में काम करना शुरू किया है जो आमतौर पर पहले पुरुषों के काम माने जाते थे। इससे भी सकारात्मक बदलाव आए हैं। कल्पवृक्ष की बेवसाइट पर जाकर आप ऐसी कई शानदार पहलों के बारे में जान सकते हैं।

इन दिनों अमूमन हर सामान प्लास्टिक के डिब्बे या पन्नी में आने लगा है। हर छोटी-बड़ी चीज़ प्लास्टिक से बनने लगी है। जब प्लास्टिक नहीं था तब क्या था? प्लास्टिक अब हवा, पानी और खाने तक में आ गया है। बाल से भी महीन रेशों में टूट कर। डॉक्टरों को प्लास्टिक इंसानी अंगों और खून में भी मिल रहा है। वे कहते हैं कि इससे अभी कोई खतरा नहीं दिख रहा। प्लास्टिक बिना नुकसान पहुँचाए बना रहता है। जैसे प्लास्टिक नहीं पचता है वैसे ही प्लास्टिक की यह बात नहीं पचती है। ...

हर साल 6200 मेट्रिक टन प्लास्टिक गंगा नदी से समुद्र में मिल जाता है। एक मेट्रिक टन यानी एक हज़ार किलोग्राम।

चित्रः वसुन्धरा अरोरा
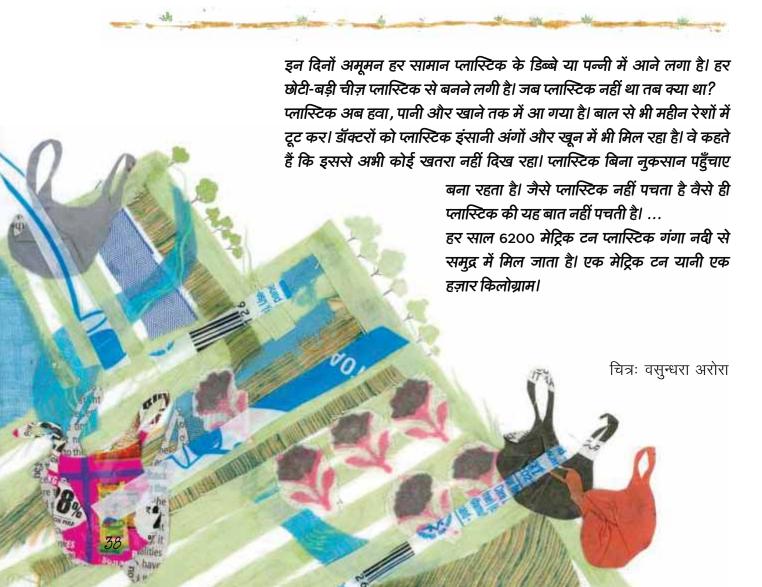
क्या तुम एक दिन में 250 किलोमीटर दौड़ लोगे?

सोपान जोशी

चित्रः एलन शॉ

एक और एक ग्यारह

वह सब कुछ जानता है! दिन-रात पढ़ता है! ढूँढा, पर पता न चला कि उसका पक्का नाम क्या है! बस, इतना पता चला कि उसके दोस्त उसे **आलू-कचालू** बुलाते हैं...

पढ़ने-लिखने के नाम से उसे चक्कर आते हैं! दिन-रात खेलता है! चाहे जो खिला लो! बोलना-चालना बहुत ही कम! कहानी सुनना उसे खूब भाता है। बोलता है, तो बस इतना, "खेलने चलेगा?" इसीलिए उसका नाम ही पड़ गया... **खेलतुतमिश**

जाड़े के दिन थे, दोपहर बाद की धूप भीनी-भीनी थी। दूर किसी मैदान से बच्चों के खेलने का शोर आ रहा था। उस तरफ से आती एक पगडण्डी के किनारे एक पीपल का पेड़ था, जिसके नीचे एक चबूतरा बना था। इसी चबूतरे पर आलू औंधा लेटा हुआ था। कमर के नीचे का शरीर धूप में नहा रहा था, ऊपर का हिस्सा छाँव में था। सिर के नीचे एक किताब रखी थी, जिसे पढ़ने में वह खोया हुआ था। बगल में एक तश्तरी में भुनी हुई शकरकन्दी रखी थी, जिस पर दाँतों के निशान बने थे।

खेलतुतमिश पगडण्डी से चलता हुआ इधर आ रहा था। पतलून के पाँयचे और जूते धूल में सने थे। कंधे उचके हुए थे क्योंकि दोनों हाथ पतलून की जेब में थे। एक-एक कदम इतने हलके से बढ़ा रहा था मानो शरीर कागज़-गत्ते का बना हो! पता ही नहीं चलता था कि उसकी चाल कितनी तेज़ है। दूर से देखो तो लगता था कि कोई कठपुतली चली आ रही है, जिसके धागे आसमान में हैं। वह पीपल के पास पहुँचा तो उसे आलू-कचालू दिखा। वह उसके पास चला आया।

खेलतुतमिश- खेलने चलेगा?

आलू-कचालू- क्यों, तेरे दोस्त कहाँ चले गए? ऊधम तो इतना मचा रहे हैं कि यहाँ तक शोर आ रहा
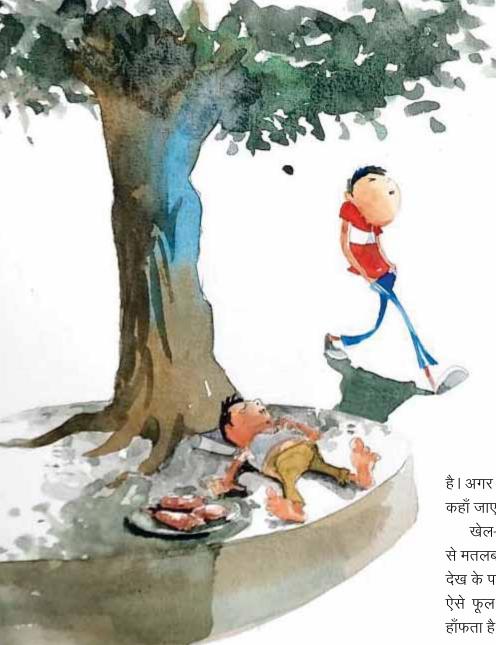
है। अगर कोई बेचारा शान्ति से बैठ के पढ़ना चाहे तो कहाँ जाए!

खेल- अरे छोड़! उन्हें खेलने से नहीं, बस लड़ने से मतलब है! मैदान पर भी चिल्ला-चोट! टी.वी. देख-देख के पागल हो गए हैं। जरा-सा दौड़े नहीं कि साँस ऐसे फूल जाती है जैसे हमारा कुत्ता कालू गर्मी में हाँफता है!

आलू- तू तो बहुत तेज़ भागता है। मैंने देखा है। तू सिखा दे?

खेल- मैं क्या उनका पी.टी. मास्टर हूँ! नहीं खेलना तो मत खेल! तू चल ना, यहाँ पड़ा-पड़ा क्या पढ़ रहा है!

आलू- मुझे नहीं खेलना। लेकिन मैं तुझे यह बता सकता हूँ कि तेरा कालू गर्मी में इतना हाँफता क्यों है और तू क्यों इतना अच्छा दौड़ सकता है।

खेल- मतलब?

आलू- इधर बैठ। शकरकन्दी खाएगा?

खेलतुतमिश बैठ गया- मुझे नहीं खाना। गर्मी में कुत्ता हाँफता क्यों है? मैं क्यों नहीं हाँफता?

आलू- कालू को पसीना नहीं आता, तुझे आता है! तेरी चमड़ी पर 40-50 लाख नन्ही-नन्ही गाँठें फैली हुई हैं, जो नंगी आँख से दिखती नहीं हैं। उनसे निकलता है पसीना यानी पानी। जब यह भाप बन के उड़ता है, तब गर्मी भी उड़ जाती है। शरीर ठण्डा हो जाता है। जैसे, कूलर के पर्दों में चलता पानी गर्मी में हवा को ठण्डा कर के कमरे में डालता है!

खेल- और कुत्ते को पसीना नहीं आता? वह बदबू तो मुझसे ज़्यादा मारता है!

आलू- जैसा पसीना इन्सान को आता है, वैसा किसी दूसरे जीव को नहीं आता। हमारे बदन के बाल महीन होते हैं। कुत्तों के बाल घने होते हैं, इसलिए उनका बदन आसानी से गरम हो जाता है। पसीने के कूलर से उनकी चमड़ी ठण्डी नहीं हो पाती। उसके पास भाप छोड़ के शरीर ठण्डा करने का एक ही तरीका है, 'हाँफना!' अब या तो वह ज़ोर-ज़ोर से हाँफ के गर्मी बाहर निकाले, या दौड़ने के लिए साँस भीतर खींचे! दोनों काम एक साथ नहीं कर सकता। फिर गर्मी में तो साँस में घुसती हवा भी गरम ही होती है।

खेल- इसका क्या मतलब कालू मुझसे तेज़ भागता है!

आलू- हाँ, भई! बहुत से जानवर हमसे तेज़ भागते हैं। घोड़े दौड़ने में माहिर होते हैं, भेड़िये भी। चीता तो 100 किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार से दौड़ सकता है, कोई कहते हैं कि 130 किलोमीटर प्रति घण्टा तक! लेकिन इस तेज़ी से वह कितनी दूर तक दौड़ सकता है?

खेल- मुझे क्या पता! आज तक कोई चीता मेरे साथ खेलने नहीं आया!

आलू- ज़्यादा-से-ज़्यादा आधा मिनट तक। या एक किलोमीटर की दूरी तक। बस। उसके बाद चीते की हवा खिसक जाती है, शरीर गर्म हो जाता है, वह हाँफने लगता है।

खेल- दौड़ने के चैम्पियन तो घोड़े होते हैं!

आलू- नहीं, लम्बी दूरी तक भागने का चैम्पियन तो तू ही है! तेरे सामने घोड़ा भी कुछ नहीं है।

खेल- अब मज़ाक करना बन्द कर। पता नहीं यहाँ बैठे-बैठे क्या-कुछ पढ़ता रहता है। ऊल-जलूल बकता है!

आलू- घोड़ा बहुत तेज़ दौड़ता है। आज तक जो सबसे तेज़ गति दर्ज हुई है वह है 88 किलोमीटर प्रति घण्टा, पर यह तो ज़रा-सी दूरी तक ही है। घोड़ा अगर तेज़ी से दौड़े तो दो-चार किलोमीटर में उसकी हवा खिसक जाती है, वह हाँफने लगता है। धीरे-धीरे चलता रहे तो आठ घण्टे तक बिना रुके कोई 40-60 किलोमीटर तक जा सकता है। एकदम सधे हुए घोड़े, जिनका बढ़िया प्रशिक्षण हुआ हो, कोई 160 किलोमीटर तक दौड़ सकते हैं, हालाँकि उन्हें बीच-बीच में आराम करना पड़ता है। घोड़ों को झाग वाला पसीना आता है, जिससे वे उतना नहीं हाँफते जितना कुत्ते हाँफते हैं।

खेल- बताओ! आदमी इतना थोड़े भाग सकता है! मैराथॉन की दौड़ भी 42 किलोमीटर की ही होती है।

आलू- मैराथॉन तो कुछ भी नहीं है। कैमिल हेरॉन नाम की एक अमेरिकी महिला एक दिन में 270 किलोमीटर दौड़ गई थी। लिथुएनिया के अलेक्जेण्डर सोरोकिन नामक पुरुष ने एक दिन में लगभग 310

किलोमीटर की दूरी तय की थी। यह तो रिकॉर्ड में दर्ज है। तुझे दौड़ते हुए देखा है मैंने। तेरे लिए मैराथॉन कुछ भी नहीं है!

खेल- क्या मज़ाक कर रहा है? 300 किलोमीटर!

आलू- अरे, यह तो केवल दो ऐसे लोगों की बात है जो दिन-रात वर्जिश करते हैं, कड़ा प्रशिक्षण करते हैं। दो लोग जिनकी दौड़ नाप ली गई! दुनिया के कई हिस्सों में ऐसे कबीले हैं जिनके वाले लोग एक दिन में सौ-दो-सौ किलोमीटर से ज़्यादा दौड़ लेते हैं। कई तो नंगे पैर भागते हैं! लम्बी दूरी तक भागने में इन्सान जैसा काबिल कोई जीव नहीं है।

खेलः- कहाँ रहते हैं ये लोग?

आलूः- ऐसे एक कबीले का नाम है 'ररामूरी', जिन्हें बाहर के लोग 'ताराउमारा' कहते हैं। ये लोग मैक्सिको के उत्तरी रेगिस्तान के पहाड़ों में लगभग 400 साल से रह रहे हैं। जब यूरोप के लोगों ने मैक्सिको पर 16 वीं शताब्दी में कब्ज़ा कर के वहाँ के लोगों को गुलाम बनाया, तब कुछ कबीले उनसे लड़ने की बजाय ऐसी कठिन जगहों पर चले गए जहाँ यूरोपीय सेनाएँ पहुँच ही नहीं सकती थीं। इन पथरीले, पहाड़ी इलाकों में चलना-फिरना बेहद कठिन था। पर इन लोगों की कठिनाई सहने की शक्ति ने इन्हें बचा के रखा। ये बहुत कम साधनों में सुखी रहते हैं और लम्बी दूरी के धावक हैं।

खेल- क्या ऐसा केवल मैक्सिको में ही होता है?

आलू- नहीं, ऐसा नहीं है। लम्बी दूरी की हर श्रेणी के विश्व रिकॉर्ड देखो, 800 मीटर से लेकर मैराथॉन तक। तीन देशों के धावकों का सिक्का चलता है, केन्या, इथियोपिया और मोरक्को। खासकर केन्या!

खेल- इन देशों के पास ऐसा क्या है जो और कहीं नहीं है?

आलू- पहाड़ और पठार पर दौड़ने वाले। ज़्यादा ऊँचाई पर दौड़ने वालों का खून और उनके फेफड़े ताकतवर हो जाते हैं। वे उतनी दूर तक, उतनी देर तक दौड़ सकते हैं जितना दूसरे नहीं दौड़ पाते।

खेल- हिन्दुस्तान में दुनिया के सबसे ऊँचे पहाड़ हैं, हिमालय है। पठार भी दुनिया के सबसे ऊँचे हैं। फिर हमारे धावक चैम्पियन क्यों नहीं हैं?

आलू- यह तो पता नहीं। पर इन देशों में साधारण लोगों में लम्बी दूरी तक दौड़ने की प्रथा है, वह भी कठिन इलाकों में। केन्या की एक जनजाति है 'कलेंजिन', जिसकी कुल आबादी 50 लाख से कम है। इस एक जनजाति से जितने चैम्पियन धावक निकले हैं, उतने दुनिया की किसी दूसरी आबादी से नहीं निकले।

खेल- क्या कलेंजिन के लोगों के खून में कुछ खास है?

आलू- नहीं। बस वे इन्सान के प्राकृतिक स्वभाव के करीब हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य प्रजाति पूर्वी अफ्रीका से ही निकली है, वहीं से जहाँ आज केन्या और युगांडा और इथियोपिया जैसे देश बन गए हैं। वे यह भी कहते हैं कि इन्सान आज जैसा है, उसे वैसा बनाने में लम्बी दूरी तक दौड़ने का बड़ा योगदान है।

खेल- मतलब?

आलू- मतलब हमारे शरीर की रचना ही लम्बी दूरी तक दौड़ने के लिए हुई है। हम दुनिया भर में इसीलिए फैल सके क्योंकि कुदरत में हमसे बेहतर धावक कोई दूसरा नहीं है। हमारी टाँगों की मांसपेशियाँ स्प्रिंग की तरह बनी हैं। अगर नंगे पैर ठीक से दौड़ना सीख लें, तो हमारी सेहत भी अच्छी रहती है और उम्र भी लम्बी हो जाती है।

खेल- तो फिर चल, अपन दोनों दौड़ने चलते हैं।

आलू- ना बाबा ना...तू ही दौड़। मैं तो यहाँ पेड़ के नीचे पढ़ता ही भला...
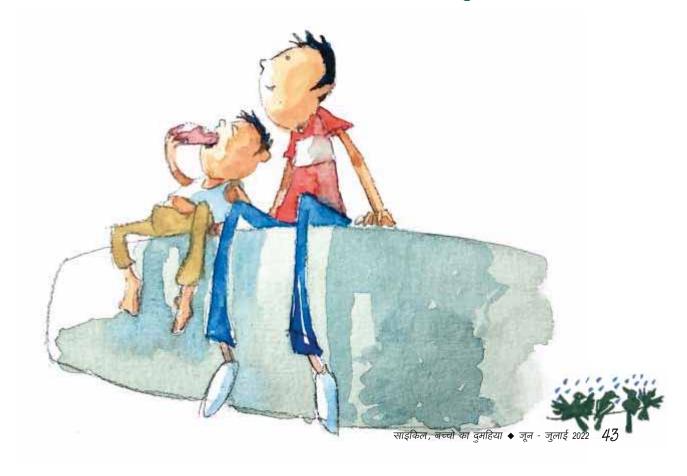
जसिन्ता की डायरी - 7

देखो तो दिखता है!

जसिन्ता केरकेट्टा
चित्रः प्रिया कुरियन

रात बिजली चली गई। पहले से मोमबत्ती खरीद कर रखा नहीं था। कुछ देर अँधेरे में ही बैठी रही। बिजली के वापस आने का इन्तज़ार करती रही। बहुत देर हो गई.. बिजली आई नहीं। थोड़ी देर में अँधेरे में सब कुछ साफ दिखने लगा। हल्की आकृतियाँ स्पष्ट होने लगीं। खिड़की से बाहर के दृश्य साफ होने लगे। उधर पेड़ है। हाँ! इसी की फुनगी पर रोज़ दो चिड़ियाँ साथ बैठी रहती हैं सुबह। जैसे, सुबह की धूप खाती हों। उधर दूर जंगल दिखता है। काली आकृति है। सघन। पेड़ों का झुरमुट। सब कुछ, कुछ ज़्यादा ही साफ दिख रहा है। इतना साफ जैसे चाँदनी रात हो। ओह! उजाले में इतनी देर से पता ही नहीं चला कि बाहर चाँदनी रात है। बत्ती के गुल होते ही पता चला कि बाहर चाँदनी रात है। और यह भी कि यह कितना सुन्दर है।

आकाश की ओर देखा तो दिखा चाँद पूरा गोल नहीं है। चाँद टेढ़ा है थोड़ा। हल्की चाँदनी है। पेड़ों की पत्तियों के बीच थोड़ा अँधेरा है। कुछ जुगनू पत्तियों के बीच थोड़े से अँधेरे में टिमटिमा रहे हैं। पत्तों से झूल रहे हैं। दूर किसी गाँव में किसी ने कोई पटाखा फोड़ा है। उसकी आवाज़ बहुत दूर इधर घर की दीवारों को हिला गई है। हवा में धमाके की आवाज़ कैसे फैलती है, यह महसूस होता है।

मैं बरामदे में आकर खिड़की से बाहर देखती हूँ। फिर कुछ देर छत पर चली जाती हूँ। चारों तरफ देखती हूँ। सोचती हूँ कि बत्ती के बुझ जाने से कितना कुछ दिखने लगता है। बिजली की रोशनी में सचमुच जुगनुओं को देख पाना सम्भव नहीं होता। न दिखाई पड़ता है पत्तों के साथ जुगनुओं का खेलना। जुगनू धरती पर बचे हुए हैं। यह सोचते ही मन खुशी से भर गया। मुग्ध भाव से उन्हें देखती रही। कमरे में लौटकर मैंने स्विच ऑफ कर दिया। अब बिजली आई भी तो कुछ समय बुझी ही रहेगी। क्योंकि उसके आते ही दृश्य बदल जाएगा। सामने की चीज़ें स्पष्ट दिखने लगेंगी। और बहुत-सी चीज़ें अँधेरे में चली जाएँगी। अँधेरे में खड़ी प्रकृति मुझे बिजली के उजाले के नीचे

बैठे देख सकेगी। पर मेरा उसे, उसी तरह देखना नहीं हो सकेगा।

फिर मैंने सोचा, आधुनिक शिक्षा जिसे लोग प्रकाश कहते हैं, वह भी इस बत्ती के जलने की तरह है। इसकी रोशनी में कुछ चीज़ें साफ दिखाई पड़ती हैं। बहुत-सी चीज़ें दिखाई नहीं पड़ती हैं। हम उन्हें इस शिक्षा के सहारे कभी नहीं जान पाते। कभी कुछ समय के लिए वह बुझ जाए तो दुनिया को हम नई आँखों से देख सकेंगे। समझ सकेंगे। और दूसरे पहलुओं का भी सम्मान कर पाएँगे। जंगल के निकट रहने वाले लोगों के लिए अँधेरा बुराई का प्रतीक कभी नहीं रहा। यह जीवन के एक हिस्से की तरह साथ है। जंगल के बहुत से जीवों के लिए रात ही दिन है। उनका समय यही है। उनके लिए यही उजाले की तरह है। इस उजाले में उन्हें इंसानों का घर दिख जाता है। उनके दरवाज़े बन्द देखकर वे किसी के घर के आँगन में आकर भी लौट जाते हैं। रात आँगन में रखा पानी पीकर चले जाते हैं। रात में दूर कहीं से उनके हँसने-रोने की आवाज़ आती है। गाँव के लोग इससे अपने गाँव के सुख-दुख का अन्दाज़ा लगाते हैं। दिन के उजाले के साथ वे जंगल के और भीतर चले जाते हैं। फिर लोगों का समय शुरू होता है। वे अपना काम करते हैं। इस तरह दोनों ही एक-दूसरे की दुनिया को समझते हैं। एक-दूसरे की पहरेदारी करते हैं, बारी-बारी से। सोचती हूँ कभी-कभी कुछ समय के लिए आधुनिक शिक्षा की अपनी अर्जित समझ के प्रकाश को बुझा कर कोने में रख देना ज़रूरी है। इस विशाल प्रकृति के दूसरे पहलुओं को देख पाने और महसूस कर पाने के लिए।

अब मुझे नींद आ रही है। पर मेरी नींद में भी रात जाग रही है। हवा में कुछ आवाज़ें तैर रही हैं। शायद झींगुर हों या कुछ और। मुझे नहीं मालूम। पर यह 'शोर' तो बिलकुल नहीं है। हाँ! कोई गीत है। रात, जंगल के साथ सुर मिलाकर इसे धीरे-धीरे गाती है।

20 मार्च, 2022

चैनपुर, गुमला (झारखण्ड)
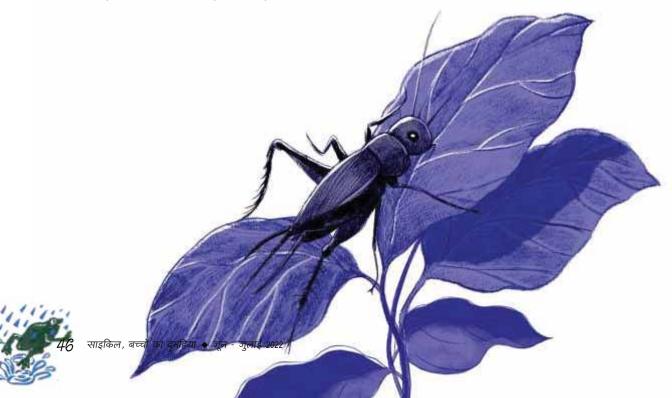
आइंस्टाइन के शहर में एक मुफ्त आइसक्रीम और...

नरेश सक्सेना
चित्रः एलन शॉ

हम बर्न जाएँगे। मेरे लिए यूरोप की यात्रा में सबसे ज़्यादा रोमांच इसी बात का था। बर्न स्विट्ज़रलैंड की राजधानी है। लेकिन रोमांच इस बात का था कि इसी शहर में आइंस्टाइन ने स्पेशल थिअरी ऑफ रिलेटिविटी को अन्तिम रूप दिया था। यहीं आइंस्टाइन को डेमोंस्ट्रेटर की नौकरी के लायक भी नहीं समझा गया; तो उन्होंने 1903 में स्विस पेटेन्ट ऑफिस में रिसर्च असिस्टेन्ट का काम स्वीकार कर लिया। आइंस्टाइन को बहुत छोटी उम्र में स्कूल से यह कह कर निकाल दिया गया था कि "यह बच्चा कुछ बोलता, बताता नहीं है।" जब हाई स्कूल में थे तो उनके पिता ने हेड मास्टर से पूछा कि आगे आइंस्टाइन को कौन-सा विषय दिलाया जाए? हेडमास्टर ने कहा, "इसे चाहे जो विषय पढ़ाइए कोई फर्क नहीं पड़ने वाला।" जबकि 16 की उम्र में ही आइंस्टाइन ने प्रकाश के व्यवहार पर सवाल उठाना शुरू कर दिया था।

आइंस्टाइन के प्रसिद्ध समीकरण ($E=mc^2$) के अनुसार संसार के सारे पदार्थों में जो बात समान रूप से मौजूद है वो यह कि पदार्थ की मात्रा को ऊर्जा में और ऊर्जा को पदार्थ में बदलना सम्भव है।

यह बात कितनी रोमांचक है कि समय की गति रुकी हुई चीज़ों और अन्तरिक्ष में गतिमान होने पर अलग-अलग होती है। यह खोज कितनी हैरतअँगेज़ है कि स्पेस में गतिमान चीज़ों के लिए समय कुछ धीमा हो जाता है।

लेकिन बर्न शहर अभी दूर है। हम अभी पेरिस में हैं। हमारी फ्लाइट सुबह 6 बजे की है और अभी सुबह के 4 बजे हैं। बाहर आकर मैंने देखा कि सड़क के दोनों ओर बनी क्यारियों और पेड़-पौधों में नगर पालिका के कर्मचारी बड़ी तत्परता से सिंचाई कर रहे हैं। बल्कि ज़्यादातर काम पूरा कर चुके हैं। लगता है वे सुबह 3 बजे से ही काम पर लग गए होंगे।

चौराहे पर एक टैक्सी खड़ी थी। मैंने उसके ड्राइवर से अँग्रेज़ी में पूछा, "हमें एयरपोर्ट जाना है। क्या आप चलेंगे?" उसने सुनकर एक अँगड़ाई ली
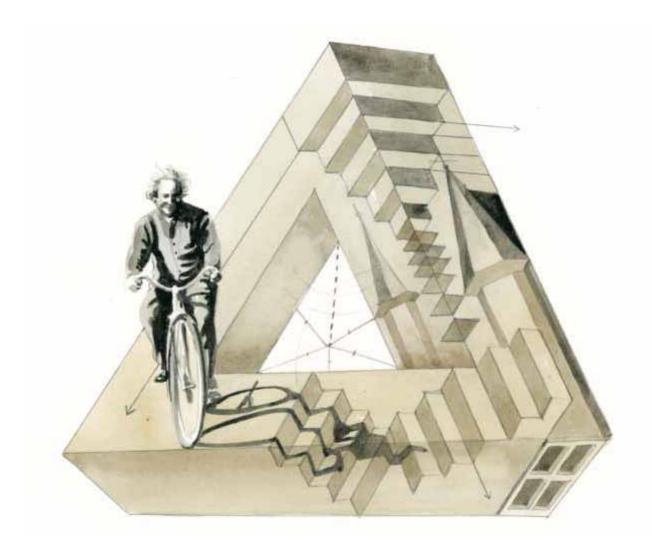
और मुँह फेर लिया। मैंने फिर कहा, "हमारी फ्लाइट 6 बजे की है। क्या आप चलेंगे?" इस बार उसने एक लम्बी जम्हाई ली और दूसरी तरफ देखने लगा।

बाद में हमारे मेज़बान ने बताया कि बहुत से फ्रांसीसी अँग्रेज़ी बोलने वालों से चिढ़ते हैं और उनका काम नहीं करते। आप इन लोगों से दुनिया की किसी भी भाषा में बात करें, भले ही हिन्दी में; वे एयरपोर्ट शब्द ज़रूर समझ लेंगे और आपको वहाँ पहुँचा देंगे, बशर्ते आप अँग्रेज़ी न बोलें।

कारण शायद यह हो कि ग्यारहवीं शताब्दी में फ्रांसीसियों ने इंग्लैण्ड पर कब्ज़ा कर लिया था। अँग्रेज़ उनके गुलाम थे। उन दिनों रईस अँग्रेज़ों के बच्चे फ्रेंच मीडियम स्कूलों में पढ़ते थे। जैसे, आजकल भारतीय बच्चे इंग्लिश मीडियम में पढ़ते हैं। आश्चर्य नहीं कि फ्रांस के लोग सभ्यता और संस्कृति में खुद को अँग्रेज़ों से बहुत ऊपर समझते हैं। बाद में अँग्रेज़ सारी दुनिया पर छा गए। फ्रांसीसी पीछे रह गए। आज भी अँग्रेज़ी में फ्रेंच भाषा के दस हज़ार से ज़्यादा शब्द हैं।

भाषा को लेकर दूसरा झटका चेक रिपब्लिक की राजधानी प्राहा (Prague) में लगा। जहाँ एक बहुत बड़े स्टोर में लगभग एक घण्टे की कशमकश के बाद

भी डबल रोटी, मक्खन और अण्डे नहीं खरीद सका। स्टोर में बहुत से लड़के, लड़कियाँ और मैनेजर अँग्रेज़ी नहीं समझ रहे थे। मैं पूरे स्टोर में घूम-घूमकर थक गया था। अन्त में निराश होकर मैंने चित्रकला का प्रयोग किया जो कि मुझे बिल्कुल नहीं आती। मैनेजर की मेज़ से कलम और कागज़ लेकर मैंने मुर्गी का स्केच बनाया और अण्डा भी। उसे देखते ही वह समझ गया। उसने चेक भाषा में एक लड़की को समझाया, तो उसने हँसते हुए अपने सभी साथियों को bochník chleba, Maslo A vejce जैसे शब्दों का उच्चारण किया।

मैंने इटली, हंगरी, हॉलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंड आदि देशों के कई शहर देखे। एक से एक सुन्दर। पर प्राहा का जवाब नहीं। प्रसिद्ध लेखक काफ्का यहीं के थे।

लेकिन भाषा को लेकर असली झटका लगना अभी बाकी था। यह बर्न में लगा। वहाँ ट्रेन से उतरते ही पाया कि मेरा झोला कँधे पर नहीं है। बहुत बड़ा स्टेशन था। स्टेशन मास्टर का ऑफिस कहाँ था पता नहीं। इसी भागदौड़ के दौरान एक महिला ने मुझे परेशान देखकर पूछा, "क्या हुआ?" मैंने ट्रेन नम्बर और सीट नम्बर बताकर कहा कि मेरा बैग वहाँ रह गया है। उसकी रिपोर्ट लिखानी है। उसने टूटी-फूटी इंग्लिश में कहा कोई बात नहीं मिल जाएगा।

"क्या आप जर्मन भाषा जानते हैं?'

"नहीं।" मैंने बोला।

"फ्रेंच?"

"नहीं।"

"इटैलियन?"

"यह भी नहीं।"

अन्त में उसने कहा, "स्विस रोमांस?"

मैंने कहा, "नहीं।"

बहुत निराशा से उसने कहा, 'तब तो बड़ी मुश्किल है। यहाँ चार भाषाओं को ऑफिशियल लैंग्वेज का दर्जा हासिल है। आपको चारों नहीं आतीं। इंग्लिश में यहाँ शायद कोई आपकी रिपोर्ट स्वीकार ही न करे। मैं आपकी मदद करूँगी। तभी दूर से मेरी बेटी टीकू मुझे आती दिखीं। उनके कँधे पर मेरा झोला था।

अगले दिन टीकू मुझे आइंस्टाइन के घर के सामने पहुँचाकर शहर घूमने चली गई। उसने कहा, "आइंस्टाइन का घर देखने के बाद आप यहीं रहिएगा। मैं लौट कर इसी जगह मिलूँगी।" कई सीढ़ियाँ चढ़कर एक बहुत लम्बा बरामदा था। जिसमें कतार से दुकानें थीं। आइंस्टाइन के घर का दरवाज़ा बन्द था। मैंने ध्यान से देखा कि कोई बोर्ड या पट्टी वहाँ हो जिस पर घर देखने का समय लिखा हो। लेकिन वहाँ ऐसा कुछ नहीं था। उसी घर से सटा एक आइसक्रीम पार्लर था। जिसके बोर्ड पर 'आइंस्टाइन आइसक्रीम पार्लर' लिखा हुआ था। दुकान पर एक किशोर उम्र का लड़का था। उसकी बातचीत में इश और निष्ट जैसे शब्दों से मैंने अन्दाज़ा लगाया कि यह जर्मन भाषा बोल रहा है। बर्न शहर में ज़्यादातर जर्मन ही बोली जाती है। उसके बाद इटैलियन और फ्रेंच। कहीं-कहीं स्विस भी बोली जाती है। मैंने लड़के से पूछा कि यह दरवाज़ा कब खुलता है? उसने कहा, "टूरिस्ट के लिए खुलता तो है लेकिन समय का मुझे पता नहीं। हो सकता है दोपहर में बन्द रहता हो, तो शाम को खुल जाएगा।"

उसने मुझे सामने पड़ी कुर्सी पर बैठकर प्रतीक्षा करने की सलाह दी। कुछ देर मैं बैठा रहा फिर ऊबकर देर तक बरामदे में टहलता रहा। लड़के ने

मुझसे पूछा, "आप कहाँ से आए हैं?" मैंने बताया, "इंडिया से।" उसने आश्चर्य से कहा, "इतनी दूर से आप आइंस्टाइन का घर देखने आए हैं? यहाँ देखने को बहुत-सी चीज़ें हैं; स्विट्ज़रलैंड में लोग आल्प्स पर्वत देखने आते हैं।" मैंने कहा, "आइंस्टाइन का कद आल्प्स पर्वत से बहुत ऊँचा है। तुम्हें तो पता होगा।" वह बहुत खुश हो गया और हँसते हुए जो कहा वो जर्मन भाषा में था। लेकिन उसकी आँखों, चेहरे और हाथ की मुद्राएँ बता रही थीं; मानो उसने कहा हो, "आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं।"

इस बीच लगभग डेढ़ घण्टा गुज़र चुका था। उसने मुझसे कॉल बेल दबाने के लिए कहा।

कॉल बेल के सामने मैं रोमांच से भरा खड़ा था; कि शायद इसी कॉल बेल को आइंस्टाइन भी दबाते होंगे। मैं उसी जगह खड़ा हूँ जहाँ आइंस्टाइन खड़े होते होंगे। मैंने कई बार घण्टी का बटन दबाया लेकिन दरवाज़ा नहीं खुला। मैं भी हार मानने वाला नहीं था। आइंस्टाइन कहते थे - मुझमें कोई खास प्रतिभा नहीं है; लेकिन चीज़ों के रहस्य जानने का जुनून मुझमें है। असफलताएँ मेरी उत्सुकता को नष्ट नहीं कर सकतीं।

कुछ देर बाद मैंने सबसे सस्ती 2 यूरो वाली आइसक्रीम खरीदने के लिए 10 यूरो का नोट उस लड़के को दिया। तभी एक महिला वहाँ आई और उसके कॉल बेल दबाने पर दरवाज़ा खुल गया। मैं आइसक्रीम लिए हुए उस महिला के पीछे भीतर चला गया। सीढ़ियाँ चढ़ती हुई महिला ने मुड़कर मुझे देखा और कहा आप ऊपर नहीं आ सकते; घर की सफाई और मरम्मत चल रही है। टूरिस्ट के लिए कुछ दिन बाद खुलेगा। तब आप आ सकते हैं। मैंने आग्रह किया कि मेरा स्विट्ज़रलैंड प्रवास सिर्फ तीन दिन का है और मैं बहुत देर से प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आइंस्टाइन का घर जिस हाल में भी हो मुझे देख लेने दीजिए। उसने क्षमा माँगते हुए कहा आइंस्टाइन बहुत अस्त-व्यस्त ढंग से रहते थे लेकिन इतने खराब ढंग से भी नहीं जैसा हमने इन दिनों उनका घर कर दिया है। आपके ऊपर बहुत गलत प्रभाव पड़ेगा।

मेरे भाग्य में सिर्फ उनका दरवाज़ा देखना बदा था। यह भी क्या कम सौभाग्य की बात थी। मैं धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतरकर आइसक्रीम वाले काउण्टर पर गया तो लड़केने 10 यूरो का नोट मुझे वापस किया। मैंने सोचा शायद उसके पास टूटे पैसे ना होंगे तो मैंने अपनी जेब से छोटे नोट और सिक्के निकाले। उसने कहा, "नहीं...नहीं! मैं आपसे आइसक्रीम के पैसे नहीं लूँगा।" मैंने कहा, "क्यों?" उसने कहा, "आप यहाँ क्यों आए हैं?" फिर खुद ही कहा कि आइंस्टाइन के प्रति आदर के कारण न! और मैं आपसे पैसे नहीं ले रहा; तो आइंस्टाइन के प्रति आदर के कारण ही।

मैंने उससे पूछा, "क्या यह आइसक्रीम पार्लर तुम्हारा है?" उसने कहा, "नहीं, मैं यहाँ काम करता हूँ।" "तब तो तुम्हें पैसे ले लेना चाहिए वरना मैं दूसरी आइसक्रीम तुमसे कैसे लूँगा।" मैंने पाँच यूरो वाली आइसक्रीम की तरफ इशारा करते हुए कहा। वह बोला, "दूसरी आइसक्रीम के पैसे मैं ले लूँगा। लेकिन पहली वाली के नहीं।"

उसने मुझे बताया कि यहाँ से बाएँ हाथ मुड़कर मैं सीधी सड़क चलता जाऊँ तो नदी पर पुल मिलेगा। पुल पार करने के थोड़ा-सा आगे बाएँ हाथ पर आइंस्टाइन का म्यूज़ियम है, वो मुझे देखना चाहिए। मैंने उससे कहा, "मेरे पीछे मेरी बेटी यहाँ आए तो उसे बता देना कि मैं म्यूज़ियम देखने गया हूँ और लौटकर यहीं आऊँगा।" उसने घड़ी देखी और कहा,

"एक घण्टे बाद मेरी ड्यूटी खत्म हो जाएगी। तब तक वह लौट आईं तो बता दूँगा।"

उसके बताए रास्ते पर मैं चला। नदी पर गुज़रते हुए मैंने रुककर उसे ध्यान से देखा। क्योंकि आइंस्टाइन की जीवनी में इस नदी में उनके देर-देर तक नौका-विहार करने का ज़िक्र था। इस नदी का नाम आरे था। और यह जर्मनी की राइन नदी की सहायक नदी थी। यह एक छोटा-सा शान्त शहर है। सड़कें लगभग सुनसान थीं। रास्ते में बैट्री से चलने वाले खुले रिक्शे चलाते हुए दो भारतीय मुझे मिले। उन्होंने मेरा कुर्ता पायजामा देखकर, हाथ हिलाकर मेरा अभिवादन किया। यूरोप में ऐसा कोई शहर मैंने नहीं देखा जहाँ मुझे काम करते हुए भारतीय न मिले हों।

उस जर्मन लड़के की भावना और इन दो भारतीयों के अभिवादन से मेरी सारी थकान और निराशा खत्म हो गई थी। मैंने स्वयं को प्रफुल्लता और ऊर्जा से भरा हुआ महसूस किया और उत्साह के साथ म्यूज़ियम में दाखिल हुआ।

वहाँ बहुत सुरुचि के साथ आइंस्टाइन के जीवन और सिद्धान्तों के फोटो विवरण और मॉडल प्रदर्शित थे। एक बहुत बड़े पर्दे पर चलती हुई सीढ़ी प्रदर्शित थी जिसमें नीचे वाली सीढ़ी पर आइंस्टाइन खड़े हैं और उनसे कुछ सीढ़ियाँ ऊपर एक बच्ची खड़ी है। जो आइंस्टाइन को इसलिए जीभ चिढ़ा रही है कि वह आइंस्टाइन से आगे है। तभी आइंस्टाइन अपने हाथ की टॉर्च जलाते हैं तो रोशनी टॉर्च से निकल कर जाती हुई दिखती है और लड़की से आगे निकल जाती है। लड़की आश्चर्य से प्रकाश को अपने से आगे जाते हुए देखती है।

दरअसल यह प्रदर्शन प्रकाश की तेज़ रफ्तार दिखाने के लिए था। विडम्बना यह थी कि इसे दिखाने

सलाह

अगर सपने में पाखाना दिखे तो उसका इस्तेमाल मत करना.

चित्रः वसुन्धरा अरोरा
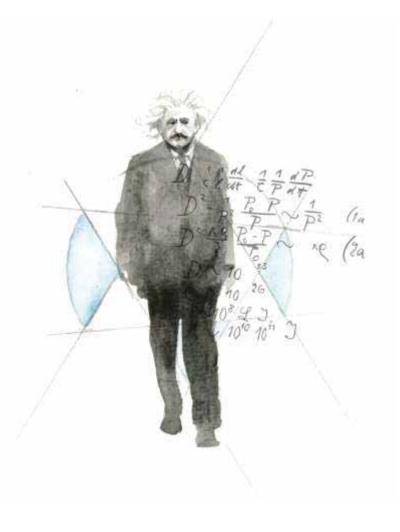
के लिए प्रकाश की गति को बहुत धीरे-धीरे चलते हुए दिखाया गया था। जबकि प्रकाश की गति तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकण्ड होती है। यह भी आइंस्टाइन ने ही सिद्ध किया था कि अन्तरिक्ष में प्रकाश का स्रोत स्थिर हो या गतिमय; समय की गति तो प्रभावित होती है, लेकिन प्रकाश की गति पर कोई असर नहीं पड़ता।

समय और स्थान के रिश्ते की बारीकी में ना जाएँ तो भी इन दोनों को एक-दूसरे से अलग करना असम्भव है। सोच कर देखिए कि मैं यदि कहूँ कि मैं आपसे भोपाल में इकतारा के गेट पर मिलूँगा। लेकिन समय और तारीख न बताऊँ तो क्या आप महीनों तक मेरी प्रतीक्षा करते रहेंगे? या इसका उल्टा कि मैं समय तो बता दूँ लेकिन स्थान न बताऊँ तो आप मुझे कहाँ-कहाँ ढूँढेंगे।

एक और कल्पना करिए कि आप स्थिर हवाई जहाज़ में बैठे हैं और एक खास ऊँचाई से एक गेंद छोड़ते हैं, जो दो सेकेण्ड में जहाज़ के फर्श पर गिरती है (यद्यपि गेंद गुरुत्वाकर्षण के बल त्वरण यानी एक्सल्रेशन के साथ गिर रही है, जिसके कारण गिरने की गति प्रति क्षण बदलेगी, मोटे तौर पर इस बारीकी में बिना जाए हुए); मान लीजिए यह दूरी दो मीटर है यानी गेंद के गिरने की औसत रफ्तार एक मीटर प्रति सेकेण्ड है।

अब हवाई जहाज़ उड़ रहा है। अब गेंद को छोड़िए। तब भी वह दो सेकण्ड में ही नीचे गिर जाएगी। लेकिन तब भी क्या वह दो ही मीटर चलेगी। क्योंकि एक सेकण्ड में तो हवाई जहाज़ 100 मीटर आगे चला गया है और दो सेकण्ड में 200 मीटर। तो गेंद ने गिरते-गिरते कितनी लम्बी यात्रा कर ली। यह बहुत मोटा उदाहरण है। अन्तरिक्ष में बहुत तेज़ रफ्तार से जब कोई चीज़ गतिमान होगी तो यह समय को धीमा कर देगी। इसे समझना बहुत आसान नहीं है। हम इसकी कल्पना ही कर सकते हैं। हालाँकि आइंस्टाइन ने कहा है कि यदि आप छह वर्ष के बच्चे को कोई सिद्धान्त नहीं समझा सकते तो इसका मतलब यह है कि आप खुद भी उस सिद्धान्त को नहीं समझते।

म्यूज़ियम में चीज़ों को देखते और सोचते हुए कितना समय गुज़र गया इसका मुझे होश तब आया जब किसी ने मुझे आगाह किया कि म्यूज़ियम बन्द होने का समय हो गया। हालाँकि मैं बहुत धीमी गति से चीज़ों को देख और समझ रहा था; फिर भी मेरे लिए यह समय बहुत तेज़ गति से गुज़रा था। क्या यह

भी सापेक्षता के सिद्धान्त का एक नमूना था?

बाहर निकलने से पहले मैंने सोचा कि पेशाब कर लूँ क्योंकि भारत की तरह यहाँ सन्नाटे में किसी पेड़ की आड़ में खड़े होकर पेशाब करते मैंने किसी को नहीं देखा था। इसलिए मैंने एक सज्जन से टॉयलेट का रास्ता पूछा। टॉयलेट ग्राउण्ड फ्लोर पर था। लेकिन अकसर विदेशियों के अलग तरह के उच्चारण के कारण उनकी बात समझ में नहीं आती। इसलिए मैं अन्दाज़ से इधर-उधर घूम कर फिर उनके पास आ गया। तब उन्होंने नीचे की तरफ इशारा किया। मैंने महसूस किया कि भाषा की जगह इशारे ज़्यादा कारगर होते हैं।

जब मैं सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आया तो मेरा दिल धक् से रह गया। ऊपर सन्नाटा था। न कोई आदमी था, न कोई आवाज़। यहाँ-वहाँ दौड़ कर मैंने पाया कि सारे दरवाज़े बन्द हो चुके हैं। पर्दे पर चलने वाली फिल्म का प्रोजेक्शन और तमाम रोशनियाँ भी बन्द। मैं दौड़कर फिर नीचे गया। नीचे मोटे काँच की एक पारदर्शी दीवार थी। इससे सड़क दिख रही थी। लेकिन सड़क पर दूर तक कोई आता-जाता नहीं दिख रहा था। वहाँ दरवाज़ा भी था, लेकिन वह बन्द था। मैं भागकर फिर ऊपर गया। वहाँ का सन्नाटा अब और गहरा हो चुका था। मुझे अपनी धड़कने तक सुनाई पड़ रही थीं।

मैंने सोचा यदि मैं रात भर यहीं बन्द रह गया तो शायद ठण्ड से अकड़ कर मर जाऊँगा। टीकू को कौन बताएगा कि मैं कहाँ हूँ। आइसक्रीम वाला लड़का जा चुका होगा। और यदि टीकू को पता लग भी जाए कि मैं म्यूज़ियम देखने आया था तो वह म्यूज़ियम बन्द देखकर लौट जाएगी। उसे यह ध्यान ही नहीं आएगा कि मैं भीतर बन्द हो सकता हूँ। ऐसी आवाज़ करते रहना होगा कि जो बाहर से सुनाई दे।

मुझे उस बच्चे की याद आई जिसे क्लास टीचर ने टॉयलेट में बन्द कर दिया था। यह आखिरी पीरियड था इसके बाद स्कूल की कई दिनों तक की छुट्टी थी। घण्टी बजते ही क्लास के सारे बच्चे बाहर भाग गए और टीचर भी सज़ा की बात भूल गईं। बिना दरवाज़ा खोले बाहर निकल गईं।

स्कूल के गेट पर और क्लासरूम पर ताला पड़ गया। बच्चा घर नहीं लौटा तो माँ-बाप पता करने आए। लेकिन स्कूल के गेट और क्लासरूम पर ताला पड़ा देखकर लौट गए। पुलिस में रिपोर्ट की। अगले दिन जब तक पुलिस ने उस टीचर का पता लगाया तब तक वह छुट्टियों में शहर से बाहर जा चुकी थी। किसी को ध्यान नहीं आया कि बच्चा बाथरूम में बन्द होगा। कई दिनों के बाद जब स्कूल खुला बच्चे की लाश बाथरूम में मिली। बच्चा भूख प्यास से मर गया था। उसने दीवारों पर लिखा था। आई विल बी अ गुड बॉय। आई एम सॉरी।

सीढ़ियाँ चढ़ते-उतरते मेरे पाँव काँप रहे थे। कई बार ज़ोर-से चिल्लाया। खाली म्यूज़ियम में मेरी आवाज़ गूँजती हुई मेरे पास लौट आई। इसे सुनने वाला वहाँ कोई नहीं था। मेरे पास फोन नहीं था। क्योंकि उन दिनों अन्तर्राष्ट्रीय रोमिंग का खर्चा बहुत पड़ता था। टीकू के पास रोमिंग फोन था।

मैंने सोचा शायद म्यूज़ियम ऑफिस में टेलीफोन हो। लेकिन मुझे सारे दरवाज़े बन्द मिले।

अब सारे शब्द बेकार हो चुके थे। भला कौन-सी पंक्ति मेरी रक्षा कर सकती थी। तब मैंने अपने आप से कहा, "पैनिक मत करो। अपनी बदहवासी से मुक्ति पाओ। बाहर निकलने का रास्ता तलाशो।" आइंस्टाइन ने कहा था, "जो प्रयत्न करना नहीं

छोड़ते, वे कभी असफल नहीं होते।” तो अब एक चोर की तरह सोचो। कि शीशे की दीवार में सेंध कैसे लगाई जा सकती है। एक अपराधी की तरह तलाशो कोई हथियार या ऐसा औज़ार, जिससे शीशे पर आघात करके उसे तोड़ा जा सके। कोई हथोड़ा मिलने की सम्भावना यहाँ नहीं है। हो सकता है कोई स्टूल मिल जाए या स्टील की कोई कुर्सी। जिससे खिड़की या काँच की दीवार पर प्रहार किया जा सके।

आइंस्टाइन ने एक बार कहा था- मुझे नहीं मालूम कि तीसरा विश्व युद्ध किन वस्तुओं से लड़ा जाएगा लेकिन मैं जानता हूँ कि चौथा विश्व युद्ध पत्थरों और डण्डों से ही लड़ा जाएगा। मैं उस वक्त वही ढूँढ रहा था। यानी कोई पत्थर या डण्डा, जिससे शीशे की दीवार तोड़ी जा सके।

बदहवासी में मैं ऐसी चीज़ तलाश रहा था जिसके वहाँ होने का कोई तर्क नहीं था। लेकिन मुझे कुछ और सूझ नहीं रहा था।

दादी का कथन अवचेतन में ध्वनित हो रहा था-

जा को प्रभू दारुण दुःख देई, ताकी मति पहले हर लेई

भय ठण्ड से अकड़ कर मरने का है तो ध्यान से देखो शायद कहीं पर्दे टँगे हों। उन्हीं से कम्बल का काम लिया जाए। अभी मरे नहीं हो और ज़रूरी नहीं कि सुबह तक मर ही जाओ। कई बार पर्वतारोही बर्फ में दबकर भी ज़िन्दा निकल आए। कई दिन तक मलबे में दबे रहने के बाद लोग ज़िन्दा बच गए। और अगर तुम मर भी गए तो उसके बाद तुम्हें कोई परेशानी नहीं होगी; जो होगा सो टीकू का होगा। फिक्र तो उसी की है।

सड़कों पर अभी उजाला है शीशे के पार से मुझे देखा जा सकता है। चलो नीचे। शुरुआत वहीं से करो।

लेकिन अगर किसी ने बाहर से देख भी लिया तो उसे यह कैसे समझाओगे कि तुम भीतर बन्द हो गए हो और बाहर आना चाहते हो। आवाज़ तो बाहर जाएगी नहीं। तो क्या करूँगा? शीशे की दीवार पीटूँगा। दोनों हाथ अपने सीने की तरफ ले जाकर बाहर फैलाऊँगा। ऐसा बार-बार करूँगा। शीशा और पीटूँगा; लेकिन कहीं तुम्हारी यही ऊल-जलूल हरकतों और इशारों से वह तुम्हें पागल समझकर आगे न बढ़ जाएँ। पागलों के लिए किसी के पास वक्त नहीं होता। अब मैं हाँफ रहा था। साँस पूरी नहीं आ रही थी। क्या यहाँ ऑक्सीजन की कमी है? ठण्डक के बावजूद पसीना आ रहा था। कहीं यह हार्ट अटैक तो नहीं?

किसी के बाहर दिखते ही काँच की दीवार पीटना ठीक होगा। लेकिन कोई दिखे तो सही।

जैसे ही मैं नीचे शीशे की दीवार तक पहुँचा, बाहर खड़े व्यक्ति ने मुझे देख लिया। यह तो वही था जिसने मुझे वॉशरूम का रास्ता बताया था। वह आश्चर्य से अपने हाथों और चेहरे की मुद्राओं से मुझसे पूछ रहा था कि तुम भीतर क्या कर रहे हो। वह वहाँ से मेन गेट की तरफ बढ़ा और थोड़ी देर में ही मुझे उसके दरवाज़ा खोलने की आहट सुनाई दी। मेरे बाहर निकलने तक वह लगातार कुछ बड़बड़ा रहा था। पता नहीं कौन-सी भाषा थी!

मैंने जीवन में पहली बार किसी के होठों से शब्दों के फूलों का झरना महसूस किया।

प्रियम्वद
चित्रः नीलेश गेहलोत

तीनों बातें अचानक और एक साथ हुईं। ये सावन के शुरुआती दिन थे। बारिश रुकी हुई थी। मैं रोज़ की तरह सुबह घूमने पार्क आया था। डेढ़ सौ साल पुराना विशाल पार्क था। सैकड़ों वृक्ष थे। कुछ उतने ही पुराने। ये बहुत बड़े हो चुके थे। एक पगडण्डी पर चलते हुए अचानक मेरे सामने कदम्ब का फूल गिरा। मेरा पाँव उठा रह गया। पाँव पीछे खींचकर हतप्रभ कुछ देर मैं उसे देखता रहा। फिर मुड़कर फूल उठाया। उसी समय .. . ठीक उसी समय अजान की गाढ़ी... थरथराती आवाज़ ऊपर की ओर उड़ी। उसी समय... ठीक उसी समय, विष्णु डे की कविता की पंक्ति कौंधी –

तोमाके ये देब जीवनेर सन्ध्यार
श्रावण मासेर प्रथम कदम फुल

तुम्हें अपने जीवन की सन्ध्या में श्रावण मास का पहला कदम्ब फूल दे सकूँगा। यह सब अचानक एक क्षण में हुआ। कदम्ब का फूल ऊपर से मिला एक वरदान था। मैंने सर उठाकर देखा। पेड़ों के बीच एक पेड़ पर कदम्ब के फूल लटक रहे थे। सुना था, जब बादल गरजते हैं तब कदम्ब की कलियाँ खिलती हैं। आषाढ़ में बादल गरज चुके थे। कलियाँ खिल चुकी थीं। अब श्रावण मास में कदम्ब फूल रहा था। सामने कूद कर वह अपनी उपस्थिति बता रहा था "देखो मैं हूँ.... देखो, मैं आ गया हूँ।"

जब बहुत छोटा था, पाँचवीं कक्षा में, तब नगर पालिका के बेहद खूबसूरत और विशाल स्कूल में कदम्ब का फूल पहली बार देखा था। मैं तब उस पेड़ के नीचे दोपहर के खाने के बाद बैठता था। बिल्कुल गोल फूल..... इतना निर्दोष गोल शायद ही कुछ और होता हो। पीला रंग, उस पर सफेद रोएँ। सिरे पर नुकीले। छुओ तो हल्की-सी चुभन।

बाद में स्कूल में ही रसखान को पढ़ा कि अगर पक्षी बनूँ तो यमुना किनारे कदम्ब की डाल पर बसेरा करूँ। बाद में संस्कृत साहित्य देखा तो हैरान था। कदम्ब हर जगह था। भवभूति के उत्तररामचरितम् में राम बाल्मीकि के आश्रम में सीता से कहते हैं तुमने

जिस कदम्ब को बढ़ाया था, वह खिले फूलों से लद गया है। कालिदास में कदम्ब खूब है। मेघूदत रघुवंश और अभिज्ञानशाकुन्तलम में है। 'काव्यप्रकाश' में कदम्ब के जंगलों से आने वाली सुगन्धित हवा की बातें हैं। वाल्मीकि के आश्रम में कदम्ब हैं। कण्व के आश्रम में कदम्ब हैं। कदम्ब के वन हैं। लोकगीतों में कदम्ब हैं। "ऐ सखी मैंने कदम्ब की डाल पर झूला डाला है।" अब कदम्ब बहुत कम दिखता है। शहरों में, पार्क में, फिल्मों में कदम्ब नहीं है। कविताओं में, नाटकों में नहीं है।

मैं विष्णु डे की पंक्ति बुदबुदाता हूँ। "तुम्हें अपने जीवन की संध्या में श्रावण मास का पहला कदम्ब फूल दे सकूँगा।" मैंने कदम्ब के पेड़ को देखा। कुछ डालें नीची थीं। उनमें दो फूल लटक रहे थे। मैंने उचककर डाल पकड़ नीचे खींची। पत्तियों के साथ कदम्ब का एक फूल तोड़ लिया। उस डण्डी को अपनी कमीज़ की ऊपर की जेब में रख लिया। अब मेरी जेब में हरी पत्तियों के बीच कदम्ब का पीला, सफेद मुलायम रोओं से ढँका गोल फूल था।

मैं पार्क में टहलने लगा। मैंने आश्चर्य और

कौतुक से देखा। जो मेरे सामने से आ रहे थे उनकी नज़र मेरी जेब पर टिक जाती थी। यह क्या है? कौन-सा फूल है? पहले तो कभी नहीं देखा। मैं गर्व से इठलाता हुआ घूम रहा था। मेरे पास कदम्ब था। सामने से दो महिलाएँ आ रही थीं। एक ने बुरका पहन रखा था। उनके साथ एक तीन-चार साल की बच्ची थी। गुड़िया जैसी। उसके हाथ में कुछ फूल थे। मैंने देखा। बेला के ताज़े फूल थे। गिरे हुए ताज़े कनेर थे। लिली था। मेरे सामने से गुज़रते हुए उन्होंने आधी झुकी नज़रों से मेरी जेब का फूल देखा। मैं मुस्कुराता हुआ आगे बढ़ गया।

कुछ ही कदम गया था कि पीछे से किसी ने मेरा हाथ पकड़ा। मैं रुक गया। घूम कर देखा। वही छोटी बच्ची थी। अपनी माँ को छोड़कर भागती हुई आई थी।

...... "... दे...दे...." उसने मेरी जेब की ओर नन्हीं उँगली उठाई। मैंने उसकी आँखें देखीं। वे कदम्ब पर टिकी थीं। खुशी हैरानी उत्तेजना से उसका मासूम, घना चेहरा दमक रहा था। मैंने जेब से कदम्ब निकाला। उसे दे दिया। उसने अपनी हथेली के फूलों में उसे जोड़ा और वापस भाग गई। मैं उसे जाते देखते रहा। अपनी माँ के पास पहुँच कर वह रुकी। मुड़ी। मुस्कराई। उसके होठों पर श्रावण मास का एक और नया, अद्भुत फूल खिला था। धरती पर खिला हुआ सबसे सुन्दर फूल। मैं भी मुस्कराया। हाथ हिलाकर आगे बढ़ गया।
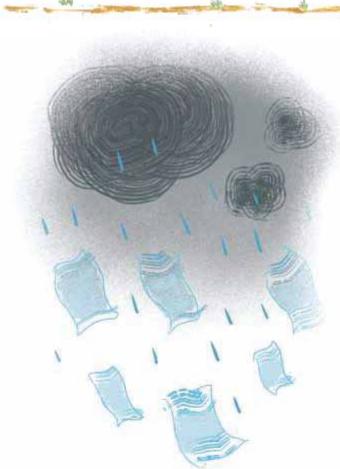
आसमान धूप के साथ
हवा तो देता है
उसे बारिश के साथ
तौलिया भी देना चाहिए।

मयंक टण्डन

चित्रः तापोशी घोषाल

छिपकली की पूँछ

राघवेन्द्र गदगकर
चित्रः प्रिया कुरियन
अनुवादः शशि सबलोक

वैसे, मेरा प्यार तो इंडियन पेपर वास्प ही था, पर दिल उस छिपी कली पर भी आ गया जिसे लोग छिपकली नाम से ज़्यादा जानते हैं। मेरे गुरु माधव गाडगिल से मेरी हालत देखी न गई। और उन्होंने मुझे बॉम्बे नैचुरल हिस्ट्री सोसाइटी जाने की सलाह दी।

छिपकलियों से मुलाकात

मैंने भी देर न की। ट्रेन पकड़ी और बैंगलोर से सीधे बम्बई आ पहुँचा। सुबह का वक्त था। डेनियल साहब बादस्तूर दफ्तर में मौजूद थे। डेनियल साहब सरीसृपों (रेंगनेवाले) और उभयचरों (ज़मीन और पानी दोनों में रहने वालों) के खासे जानकार थे। इस्तकबाल के बाद उन्होंने मुझे छिपकलियों से मिलवाया। कई कई रैक उनसे भरे हुए थे। मैं जितना चाहूँ उनके साथ वक्त बिता सकता था। मेरे हाथ में पकड़े सूटकेस को देखकर वे बोले, “बम्बई में रहोगे कहाँ?”

मैं बोला, “पता नहीं।”

थोड़ा सोचने के बाद वो फुसफुसाए, “किसी को कानों-कान खबर न हो। तुम यहीं फर्श पर छिपकलियों की रैक के बीच सो जाया करना। तुम्हारे मेरे अलावा सिर्फ चौकीदार को इसका पता हो।“

ऐसा ही हुआ। हर सुबह चुपके से निकलकर मैं चौकीदार के साथ चाय की चुस्कियाँ लेता। और 10 बजे विज़िटर्ज़ की तरह फिर चला आता। ऐसे ही शाम को जाते विज़िटर्ज़ की तरह निकलता और रात नौ बजे चुपके से आकर छिपकलियों के बीच लेट जाता।

मज़ेदार दिन थे। बम्बई से प्यार हो गया था मुझे। खूब लम्बे चलते रस्ते, सस्ते रेस्टोरेंट, सस्ते सिनेमाघर। ऊपर से फुटपाथ में बिकतीं बेशुमार किताबें। बैंगलोर वापसी पर मैंने कुछ पिंजरे बनाए। और घर में घूमती छिपकलियों को उनके हवाले कर दिया। मैं घण्टों उन्हें लड़ते, प्रेम करते, अण्डे देते देखता। उनके छोटे अण्डों से फूटते बच्चों को देखना

अद्भुत था। जैसे ही मेरी पत्नी को पता चला कि अब मैं रात भर जागकर छिपकलियों की इकोलॉजी को और समझूँगा। उन्हें गश ही आ जाता। पर इसकी नौबत नहीं आई। मैं वापस पेपर वास्प के पास चला आया।

पर छिपकलियाँ मेरे दिल में हमेशा रहीं। और मैं गाहे-बगाहे उनके बारे में पढ़ता रहता।

जंगल की छिपकलियाँ

उन्हीं दिनों मैंने डोनाल्ड टिंकल के काम को जाना। उन्होंने छिपकलियों की एक ही प्रजाति (Uta stansburiana) पर नौ साल तक काम किया था। इस दौरान उन्होंने 3729 छिपकलियों की निशानदेही की। उन्होंने 12927 बार छिपकलियों को पकड़ा, छोड़ा और फिर पकड़ा। वे और उनके साथी सारा-सारा दिन छिपकलियों को खोजने चप्पा-चप्पा छान मारते। कभी वो किसी एक छिपकली पर ही पूरा ध्यान लगा देते। वो क्या-क्या करती है?, कहाँ जाती है?, कैसे साथी तलाशती है? उन्होंने छिपकलियों को पकड़ने, उनका वज़न लेने, नपाई करने और छोड़ देने के तरीके खोज लिए थे।

बचपन में हमने मज़े-मज़े में कितनी ही छिपकलियों को पकड़ा होगा। अगर स्कूल में ही पता चल जाता कि इस पर अध्ययन हो सकता है, तो तभी से कुछ आँकड़े इकट्ठा कर लेते।

मैं पेपर वास्प की दिलचस्प दुनिया में कुछ इस तरह मुब्तला रहा कि Uta stansburiana, को सालों भूला रहा। 1996 में मेरी स्मृति में छिपकलियाँ फिर दौड़ती आईं, और साथ ही उनके पीछे दौड़ते डोनाल्ड टिंकल आए। इस साल कैलिफोर्निया में नर Uta stansburiana, पर एक अध्ययन हुआ कि कैसे और क्यों इनके गले पर तीन रंग पाए जाते हैं... नारंगी, पीला और नीला।

इतनी पीढ़ियों से क्यों तीन रंगों के नर बने हुए हैं, यह समझने के लिए अध्ययन हुआ। नारंगी गले वाले नर सबसे लड़ाके पाए गए। वे अपने बड़े इलाके पर कब्ज़ा रखते हैं ताकि मादाओं को आकर्षित कर सकें। नीले गले वाले नम्र और छोटे इलाके वाले होते हैं। ये आपस में मिल-जुलकर रहते हैं। पीले गले वालों की बनावट मादाओं से बहुत मिलती है। इनका कोई अपना इलाका नहीं होता। कई बार तो वे मादाओं का ढोंग रचते दूसरे नरों के इलाकों में घुस जाते हैं। और उस इलाके के नरों की ओर आकर्षित मादाओं के साथ प्रेम सम्बन्ध बना लेते हैं।

तीनों की फिटनेस इतनी अलग है कि किसी एक का बने रहना और बाकी दो का खत्म हो जाना जैसा मामला बनता दिखता नहीं है। प्रकृति के चुनाव का तरीका संख्या पर निर्भर करता है। दूसरों की तुलना में आपकी संख्या ज़्यादा है तो आप बने रहेंगे।

जब नारंगी नर ज़्यादा हो जाते हैं तो नीले वालों को खेल से बाहर कर देते हैं। पर वे छिपे रुस्तम पीलों से मात खा जाते हैं। नतीजा यह कि नारंगी कम हो जाते हैं और पीले बढ़ जाते हैं। नारंगियों के कम होते ही नीलों की संख्या बढ़ने लगती है। क्योंकि सामने मैदान साफ होता है। पीले नर नीलों की इलाके में सेंध नहीं मार पाते हैं। क्योंकि एक तो नीलों में आपसी भाईचारा ज़्यादा होता है, दूसरे उनके छोटे इलाकों पर पहरेदारी मुस्तैदी से होती है। तो पीले कम होने लगते हैं। इनके कम होते ही नारंगियों की संख्या में इज़ाफा हो जाता है। और यह चक्र चलता रहता है।

यह जानना इतना दिलचस्प था कि एक बार

फिर मैं छिपकलियों की ओर खिंच गया। और पता करने लगा कि छिपकलियों पर कहाँ क्या काम हो रहा है।

...

कर्नाटक का हम्पी गाँव सैलानियों में बेहद मशहूर है। एक तो यहाँ 14वीं शताब्दी के विजय नगर शासनकाल के खण्डहर हैं। दूसरा, महीन नक्काशीदार मन्दिर। पर राजकुमार राद्दर का यहाँ आना किसी भी सैलानी या भक्त से ज़्यादा होता था। राजू ने यहाँ की साउथ इंडियन रॉक अगअमा गिरगिट पर काफी काम किया। उसकी हर हरकत को ध्यान से देखा। जैसे, उसका पुश अप की मुद्रा में आना या सिर को हिलाना डुलाना, पूँछ उठाना, गले की रंगीन चमड़ी को फुला लेना, टाँगों को खींचना, पीठ को उँचा लेना और पीठ के ऊपरी हिस्से को चपटा कर लेना। राजू इन्हें गिरगिट की भाषा कहते थे। दुखद है कि 35 साल की उम्र में वे नहीं रहे। उनके साथ ही यह दिलचस्प काम भी कुछ समय के लिए रुक गया।

पिछले दिनों मेरी सहकर्मी मारिया ठाकर और उनके छात्रों ने इसी पर काम करना शुरू किया। अपने आसपास के मुताबिक रंग बदलने की बात तो कइयों को पता होगी। पर असल कमाल तो अपने दुश्मन या साथी को रंग बदलकर इशारे करने में है। और ज़रूरी है कि यह काम फौरी तौर पर हो।

मारिया और अनुराधा कुछ नर और मादा गिरगिटों को प्रयोगशाला ले आईं और उन पर कई प्रयोग किए। पाया गया कि जब नर मादा के रुबरु हुए तो रंग उतनी तेज़ी से नहीं बदला जितना तब हुआ जब नर नर से रुबरु हुए।
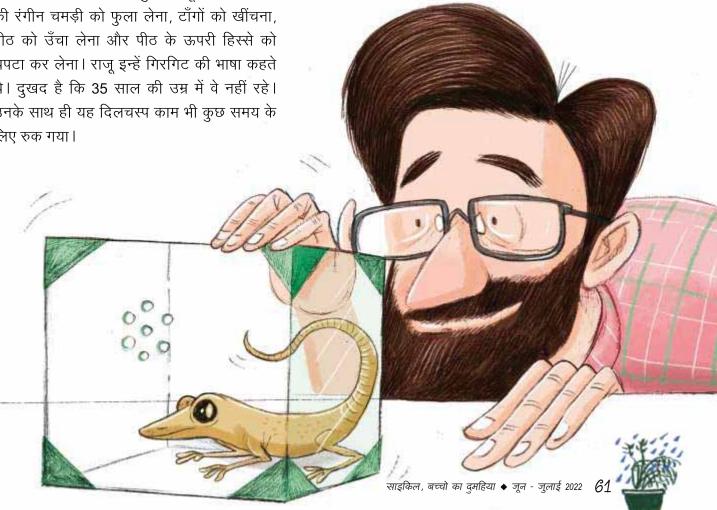
यह भी पता लगा कि नर एक सेकेण्ड में रंग बदल सकने की क्षमता रखते हैं। शरीर के अलग-अलग हिस्सों में यह बदलाव अलग होता है। साथी से मिलन और आक्रामक सम्बन्धों के दौरान रंगों में बदलाव अलग होता है। पहली बार एगैमिड छिपकलियों में इस तरह की बात रिकॉर्ड की गई थी। इससे कई सवाल खड़े हुए। जैसे, आसपास के हिसाब से तेज़ी-से रंग बदल पाने की क्षमता का नर की फिटनेस से कोई लेना-देना है क्या? क्या इससे मादा के लिए उसका आकर्षण बढ़ जाता है? या दूसरे नर उससे डरने लगते हैं?

रॉक छिपकली के अनुराधा और मारिया के अध्ययन से कई सवाल उठते हैं। इनका जवाब पाने के लिए शहरी जीवों और गाँवों ना कि जंगल में रह गए उनके भाई बन्धों का अध्ययन किया जाना आवश्यक है। शहर में उनके सामने नई चुनौतियाँ होती हैं। हमारी ही तरह। नए दुश्मन, नए संसाधन हैं। तेज़ी से बदली जगह और समय के साथ उन्हें ज़िन्दा रहने के नए तौर-तरीके खोजने पड़ते हैं। छिपकलियाँ इन दिक्कतों से कैसे निपटती होंगी?

इस बार अनुराधा और मारिया कर्नाटक के कोलार ज़िले के कम शोर शराबे वाले जंगलातों के साथ साथ बंगलौर की भीड़ भाड़वाले इलाकों में भी गईं। जहाँ तरह तरह के निर्माण कार्य हो रहे थे। दोनों ही जगहों से उन्होंने छिपकलियाँ पकड़ीं। उन्हें प्रयोगशाला में लाईं। उन पर प्रयोग कर उन्हें वापस वहीं छोड़ दिया। उनके प्रयोगों से पता चला है कि

• शहरी नरों में रंग बदलना धीमे होता है।

• सुरक्षित रहने की जगह चुनने के मामले में शहरी नर ग्रामीण नरों की तुलना में जल्दी सीखते हैं और जल्दी भूल भी जाते हैं।

• शहरी नर रिस्क ज़्यादा लेते देखे गए। इंसानों से डरना कम दिखा।

इन नतीजों ने कुछ और सवाल खड़े कर दिए हैं।

क्या सचमुच ये बदलाव शहरीकरण के कारण हैं? ये हमेशा बने रहेंगे या परिस्थितियों के साथ बदल जाएँगे? बढ़ते शहरीकरण से रहवासों का नष्ट होना एक वैश्विक समस्या है। इस दिशा में आगे होने वाले अध्ययनों के लिए यह अध्ययन काफी फायदेमन्द होगा।

मारिया कहती हैं कि इस शानदार जीव की कलाबाज़ियाँ कमाल की हैं। इतने सालों से इनके साथ काम कर रही हूँ। कितनी ही बार पकड़ा है। पर फिर भी गच्चा देने में इनका कोई सानी नहीं। और इन्होंने काट लिया तो अकल ठिकाने आ जाती है।

मारिया और अनुराधा को यूँ छिपकलियों के पीछे जाते देख सोचता हूँ कि अब तो हमें वैज्ञानिकों की वो घिसी पिटी छवि बदल ही डालनी चाहिए जिसमें सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा सफेद कोट में गहरी सोच में डूबा है।

(शुक्रिया The Wire. पूरा लेख यहाँ पढ़ा जा सकता है: More Fun Than Fun: My Favourite Lizard Stories)

अबीर झोपाटे, दस वर्ष
चित्रः अबीरा बंधोपाध्याय

पहले मैं भोपाल में रहता था। मगर लॉकडाउन में मेरे माता पिताजी का काम छूट गया। तो मेरे पिता काम ढूँढने निकले। तभी मेरी माँ के सर ने बोला, “हैदराबाद आ जाओ। हम तुम्हें नौकरी दे देंगे।” पिताजी ने पूछा कि घर का क्या होगा। तो उन्होंने कहा कि हम अमेरिका जा रहे हैं तो तुम हमारे घर पर रहना। तो मेरे पिताजी मान गए। और मेरी माँ भी।

उसके बाद जब हम भोपाल से जा रहे थे तो मुझे थोड़ा दुख हुआ। क्योंकि उधर मेरे बहुत अच्छे दोस्त रहते थे। मगर खुश भी था कि मेरे और दोस्त बन जाएँगे। जब हम हैदराबाद आए तो हम गोलकुण्डा किला देखने गए। हैदराबाद में बहुत घूमने की जगह हैं जो हमें देखना बाकी हैं। जब हम गोलकुण्डा देखने गए तब उधर हैदराबाद का एक त्यौहार हुआ था। जिसे ‘बोनाल’ कहते हैं। इसमें माता भैरवी अपने भक्तों के अन्दर प्रवेश करती है। और भक्त माता को प्रसन्न करने के लिए अदभुत नृत्य करते हैं। यह मेरे लिए बहुत आश्चर्यजनक था।

मगर हमने आशीर्वाद नहीं लिया क्योंकि मुझे वो डरावने दिख रहे थे।

जन्नू भाई की चक्की

संजय जोशी
चित्रः तापोशी घोषाल
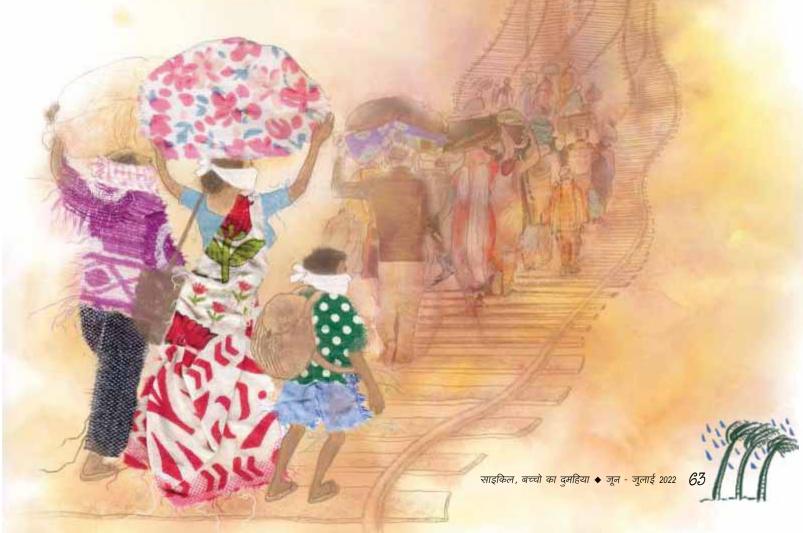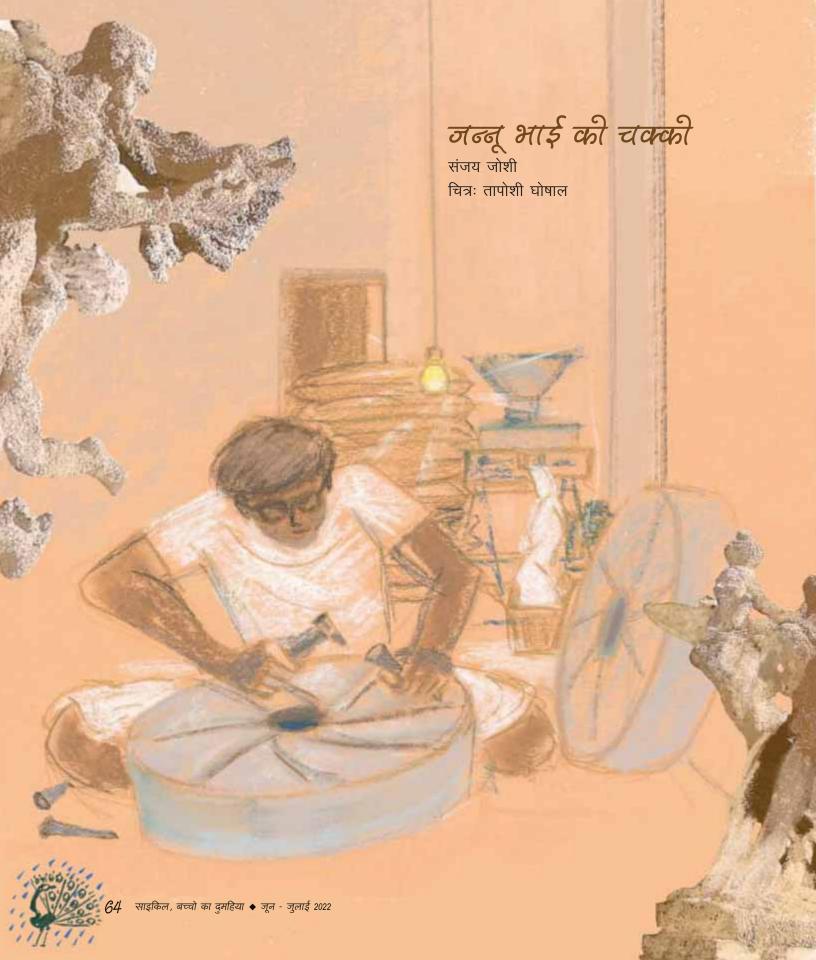
बात कोई चालीस साल पुरानी है। गंगा-जमुना के बीच पसरे शहर इलाहाबाद की। (आजकल इलाहाबाद का सरकारी नाम प्रयागराज हो गया है।) मैं आठवीं में पढ़ता था। सारा दिन नेकर ही पहने रहता था। स्कूल में भी, घर में भी और फुटबॉल के मैदान में भी। सुबह जलेबी न खाएँ और दिन बिना फुटबॉल खेले गुज़र जाए तो मन उचाट-सा रहता। हमारा मोहल्ला शहर के मुख्य रेलवे स्टेशन और शहर के प्रसिद्ध खुसरो बाग से सटा था। खुसरो बाग अपने चार मकबरों के साथ-साथ इलाहाबाद के प्रसिद्ध अमरूद 'सफेदा' के लिए भी मशहूर था। जलेबी तो अब भी इलाहाबाद में मिलती है लेकिन सफेदे की खुशबू कुछ कमज़ोर हुई है।

पिछले सप्ताह गाज़ियाबाद में अपने मोहल्ले में आटा पिसवाने गया। वहाँ जलन शब्द कानों में पड़ा। जलन शब्द को अगर गूगल पे ढूँढोगे तो इसका मतलब मिलेगा jealous.

लेकिन आटा चक्की पर जलन का मतलब अलग है। चक्की में गेहूँ डालो तो पिसते वक्त कुछ आटा पत्थर के दो पाटों में अटका रह जाता है। आपने अगर पाँच किलो गेहूँ पिसने दिया है तो सम्भव है कि चक्की वाला आपको जलन का सौ ग्राम काटकर चार किलो नौ सौ ग्राम आटा वापिस दे।

उन दिनों किसी-किसी चक्की पर लिखा दिख जाता - यहाँ जलन नहीं काटी जाती है। ऐसी चक्कियों पर आटा पिसवाने की होड़ मची रहती थी। हमारे मोहल्ले में दो चक्कियाँ थीं। एक जन्नू भाई की और दूसरी अब्बास भाई की। हम अकसर जन्नू भाई के यहाँ ही आटा (याकि गेहूँ) पिसवाने जाते। अब्बास भाई के यहाँ शायद जलन काटी जाती थी।

जन्नू भाई अपनी चक्की से निकले सफेद आटे की तरह ही बाँह वाली सफेद बनियाइन और घुटनों से वापिस समेटी झक धोती पहनते थे। वो अकेले ही सारे काम करते। चक्की के चौड़े डब्बे में गेहूँ डालते और खटाक की आवाज़ के साथ बिजली का लीवर नीचे गिराते। बरसाती पहाड़ी नदी की तरह शोर करती चक्की चल पड़ती। थोड़ी देर बाद फिर ज़ोर की खटाक की आवाज़ के बाद चक्की बन्द कर दी जाती। जन्नू भाई चक्की के मुँह में लिपटे सफेद कपड़े के थैले में अन्दर तक हाथ डाल बचा-खुचा पिसा आटा निकाल लेते। ताकि नुकसान कम हो। वैसे वो जलन तो काटते नहीं थे।

आज इलाहाबाद के उस मोहल्ले के लोग भी पैकेट में मिलने वाला आटा खाते हैं। जन्नू भाई की चक्की तो नहीं रही मगर जलन अब हमारी ज़िन्दगी में बाकायदा बनी हुई है।

जन्नू भाई को चक्की की सफाई करते भी देखा है। वे चक्की के दोनों पाट दुकान में बिछा लेते थे। ऊपर पीली रोशनी वाला बल्ब जलता रहता। वे छोटी नुकीली छेनी से चक्की के पाटों से बड़ी कारीगरी से चिपके आटे को कुरेदकर निकालते रहते। एक बार कोलकाता में विश्वभारती विश्वविद्यालय जाना हुआ। परिसर में जहाँ-तहाँ मूर्ति शिल्पी राम किंकर बैज के शिल्प हैं। उनके एक शिल्प में बरबस अपने मोहल्ले के जन्नू भाई दिखाई दिए। अपनी चक्की के पाटों पर अपनी छेनी के साथ झुके हुए। अपनी झक सफेद धोती और बनियाइन पहने हुए।

इकतारा की धुनें

इकतारा बच्चों की दुनिया में साहित्य तथा कला के रंग और अनुभव जुटाने में लगा है। बच्चों को अपने मन की किताबें, पत्रिकाएँ पढ़ने को मिलें। उन्हें कहानियाँ सुनने को मिलें। कविताएँ गुनगुनाने को मिलें। चित्र आदि तमाम कलाओं का सुख उन्हें सम्भव हो। एक ऐसे भरे-पूरे बचपन का स्वप्न इकतारा दुनिया भर के बच्चों के लिए और अपने लिए देखता है।

ई-1/212 अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462016
फोन 9109915118, 9630097118
www.ektaraindia.in/ektarashop

क्या तुम हो मेरी दादी?
नीला दरवाज़ा
मोर डूँगरी
टिटहरी का बच्चा
मिट्टी का घर
दुनिया मेरी
एक खाली जगह
खाई दाल
Kitty in the Well
कैसा कैसा खाना
लाइटनिंग